Chapter - 3

अध्याय तीन

गुजरात के हिन्दी साहित्य को धर्म-सम्प्रदायों की देन

स्वामी नारायण सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

प्रणामी सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

जैन धर्म सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

रविभाण सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

सूफी कवि और हिन्दी साहित्य

गुजरात के हिन्दी साहित्य को धर्म-सम्प्रदायों की देन

गुजरात प्राचीन काल से ही धर्म प्रधान प्रदेश रहा है। गुजरात में हिन्दू, मुसलमान, जैन, पारसी आदि विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। मध्यकाल तक गुजरात में हिन्दू, मुसलमान और जैन धर्म को मानने वालों की बहुलता थी।

धर्म-प्रदेश होने के कारण अनेक संतों, सूफियों, धार्मिक आचार्यों आदि का आवागमन होता रहा। अपने-अपने धर्म का प्रचार करने के कारण अनेक सम्प्रदायों और पंथों का विकास हुआ। सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भी सम्प्रदाय विकसित हुए। सम्प्रदाय अथवा पंथ प्रणयन के विरोधी होते हुए भी उनके शिष्यों के द्वारा उनके नाम से सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय तथा पंथों का प्रणयन किया गया। गुजरात में विभिन्न कारणों से विकसित अनेक सम्प्रदाय मिलते हैं।

गुजरात में प्राचीन काल से ही वैष्णव भक्ति प्रचलित रही है। ईसा की 10वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक वैष्णव धर्म प्रचलित था। गुजरात के कवियों ने भागवत की कथा, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों को आधार बना कर अनेक ग्रंथों की रचना की। गुजरात में वैष्णव भक्ति का पुनरुत्थान वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के द्वारा हुआ। इन्होंने 16वीं शताब्दी में गुजरात की अनेक यात्राएँ की थी। वैष्णव सम्प्रदाय से सारा भारत परिचित है। अत: इस सम्प्रदाय पर पिष्टपेषण अनावश्यक है।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

औरंगजेब की मृत्यु के साथ मुग़ल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। गुजरात पर मराठों के आक्रमण (सन् 1664 ई0 से 1743 ई0 तक) हो रहे थे। किन्तु वे गुजरात में टिक नहीं पाए थे। इसके बाद गुजरात में गायकवाड़ों और पेशवाओं के बीच अधिकार के लिए संघर्ष होता रहा।[1]

लोग स्त्रियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। अनेक वर्गों में अनैतिकता का साम्राज्य था। वाममार्गी अनाचार कर रहे थे। लोग असुविधा के कारण कन्याओं की हत्या कर देते थे। कोली-वाघरे-भील आदि निम्न जाति के लोगों ने अपने हिंसक कृत्यों से जनता में आंतक फैला रखा था। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था पतनोन्मुख थी। 18वीं शताब्दी के पश्चात वल्लभ सम्प्रदाय तथा उनके आचार्यों का प्रभाव घट रहा था।[2]

इस काल की परिस्थितियों में सहजानन्द स्वामी के सद्प्रयासों से तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप स्वामीनारायण सम्प्रदाय की व्यवस्थित रूप से स्थापना हुई।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय है और इसके संस्थापक

श्री स्वामी नारायण के नाम से अभिहित किए जाते है। इस सम्प्रदाय के मूल संस्थापक आत्मानंद कहे जाते हैं; जो शांकर सिंद्धान्त को मानने वाले थे। लक्ष्मीनारायण को अपना आराध्य मानने स्वीकारने वाले स्वामी नारायण सम्प्रदाय ने नारायण को अपना स्वामी माना है। इसलिए इस सम्प्रदाय का नामकरण स्वामी नारायण सम्प्रदाय हुआ।

डॉ0 रामकुमार गुप्त ने इस सम्प्रदाय को वैष्णव धर्म का परिष्कृत रूप माना है। उनके शब्दों में -*''इसी प्रकार की सभी कुरीतियों को दूर करने के हेतु सं0 1856 के आस-पास स्वामी नारायण सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ जिसे हम एक रूप में वैष्णव धर्म का ही परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिनिष्ठित संस्करण मान सकते हैं।''*[3]

सहजानन्द स्वामी

श्री स्वामी नारायण - श्री सहजानन्द स्वामी (ई0 सन् 1781-1830) का जन्म अयोध्या के पास छपैया में हुआ था। बाल्यावस्था में इनका नाम घनश्याम[4] था। बारह वर्ष की आयु में घर छोड़ योग और तपश्चर्या करते हुए नीलकंठ ब्रह्मचारी के नाम से देश भर में परिभ्रमण करते रहे। सन् 1800 ई0 में भोज में उद्धव का अवतार माने जाने वाले स्वामी रामानन्द से उद्धव सम्प्रदाय की दीक्षा ली; जिन्होंने सहजानन्द स्वामी को उद्धव सम्प्रदाय का आचार्य होने और उसका प्रचार करने का उपदेश दिया।[5] वे सौराष्ट्र, कच्छ तथा गुजरात में 28 वर्षो तक उपदेश करते रहे। उन्होंने अपने मत के साधुओं के लिए कड़े नियम बनाए थे। धन और स्त्री के त्याग पर बल दिया। उन्होंने यज्ञ से हिंसा दूर की; बाल-हत्या, विधवाओं की सती-प्रथा बन्द करवाई; अन्ध विश्वासों को न मानने का उपदेश दिया। इन्होंने सभी सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों से मोर्चा लिया। इन सुधारवादी कार्यो के कारण अंग्रेज उन्हें बहुत मानते थे।

सहजानन्द स्वामी ने गुजरात एवं सौराष्ट्र में कई जगह मन्दिर बनवाए। गुजरात में बड़ताल, अहमदाबाद, गढ्डा और मूली में इनके प्रसिद्ध मन्दिर हैं। दार्शनिक क्षेत्र में वे रामानुज के विशिष्टाद्वैत को मानने वाले थे। किन्तु सेवा-क्षेत्र में उन्होंने पुष्टिमार्गी परम्परा को अपनाया।

श्री सहजानन्द स्वामी की कृतियाँ हैं- ***वचनामृतम् (स्वयं उन्हीं के वचन), उनके पत्र*** और ***वेद रहस्य***। वचनामृतम् में 262 सुन्दर वचन हैं। सहजानन्द स्वामी अर्थात् श्री जी के वचनामृत का उदाहरण दृष्टव्य है-

''जैसे अग्नि की बड़ी ज्वाला पर वर्षा का पानी पड़ जाय तो वह तुरन्त बुझ जाती है किन्तु बिजली से उत्पन्न होने वाली अग्नि का प्रकाश भले ही थोड़ा

दिखाई पड़ता हो फिर भी यह मेघमंडल में छिपी रहने पर भी नहीं बुझती, वैसे ही बिना विवेक के चाहे कितना ही वैराग्य रहे और भगवान से प्रीति हो जाए, तो भी अग्निज्वाला के समान कुसंगरूपी पानी से उसका नाश हो जाता है। यदि विवेकपूर्वक वैराग्य और प्रीति बनी रहे तो बिजली की अग्नि के समान थोड़ी रहने पर भी उसका नाश नहीं होता।''[6]

वल्लभ सम्प्रदाय के 'अष्टछाप' की भाँति सहजानन्द स्वामी के 'अष्टसखा' हुए हैं। ये है- मुक्तानन्द, ब्रह्मानंद, प्रेमानन्द, निष्कुलानन्द, भूमानन्द, देवानन्द, मंजुकेशानन्द, अविनाशानन्द। इन आठ कवियों में से मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द की त्रिपुटी बहुत ही प्रखर और प्रतिभाशाली है। सहजानन्द स्वामी की प्रेरणा से इस सम्प्रदाय के कवियों ने हिन्दी, संस्कृत और गुजराती में काव्य-रचना की। इनमें से हिन्दी में कविता करने वालों में प्रमुख मुक्तानन्द, प्रेमानन्द, ब्रह्मानन्द, निष्कुलानन्द, भूमानन्द, देवानन्द, मंजुकेशानन्द हैं। संस्कृत में गोपालानन्द, नित्यानन्द, शुकानन्द, वासुदेवानन्द, दीनानाथ शास्त्री आदि अनेक साधुओं ने ग्रंथों की रचना की है। हिन्दी के साथ-साथ मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, निष्कुलानन्द, प्रेमानन्द और देवानन्द ने गुजराती में सहस्रों पद लिखे हैं। ये सभी संगीत के जानकार थे तथा हिन्दी में ज्ञान, वैराग्य, नीति और कृष्ण भक्ति विषयक सरल, सुमधुर और बोधप्रद पदों की रचना की है।

इसके अतिरिक्त श्वेत वैकुण्ठदास स्वामी, सुखानन्द स्वामी, कृष्णानन्द स्वामी एव जगदीशानन्द स्वामी की रचनाएँ भी मिलती हैं।

निष्कुलानन्द स्वामी (1766 ई0 सन से 1848)

इनका मूल नाम लालजी सुथार था। पिता का नाम राम भाई तथा माता का नाम अमृत बा था। इनका जन्म सन् 1766 ई0 में सौराष्ट्र के हालारी क्षेत्र के शेखपाय गाँव में हुआ। ये जाति से बढ़ई थे। मांगरोल के निकटस्थ भोजगाँव में उद्धव सम्प्रदाय के मन्दिर में गादीपति आत्मानन्द स्वामी के शिष्य रामानन्द से इन्होंने सम्प्रदाय दीक्षा प्राप्त की। फलतः ये 'निष्कुलानन्द' नाम से विख्यात हुए। इनकी ब्रजभाषा की रचनाओं में *'मनगंजन', 'हरि विचरण', 'गुण ग्राहक', 'हरि चिन्तामणि'* आदि उल्लेखनीय है। इनकी प्रमुख रचनाएँ गुजराती है। इनके साहित्य में पंजाबी, गुजराती भाषा का असर देखा जा सकता है। संत कवि निष्कुलानन्द ने अपने काव्य में स्वामी नारायण संप्रदाय के सिद्धान्तों का भी निरूपण किया है। इनके अनुसार यदि पूर्व जन्म में हमारी तपस्या में कोई कमी रह गई हो तो हमें नर-तन धारण करना पड़ता है-

''आगे तपसी तपसा करता रही गई किंचित कामा;
ते कारण आ नर-तन धरिया सो जानत है रामा।''[7]

ये कच्छ में स्वामी सहजानन्द के साथ हो गये थे। इन्होंने सरल किन्तु सशक्त भाषा में 3000 पद लिखे हैं। जिनमें भक्ति-वैराग्य का उपदेश है।

मुक्तानन्द स्वामी (सन् 1761-1830 ई0)

श्री कृष्ण घनश्याम के प्रति अनन्य निष्ठा रखने वाले स्वामी मुक्तानन्द सौराष्ट्र के अमरेली नामक गाँव में जन्मे थे। उनका बचपन का नाम मुकुन्ददास था। रामानन्द स्वामी से दीक्षा पाने के बाद वे 'मुक्तानन्द' नाम से प्रख्यात हुए। यद्यपि मुक्तानन्द ज्येष्ठ गुरुभाई थे फिर भी उन्होंने सहजानन्द जी को विनम्रतापूर्वक अपना गुरु माना। वे परमनिष्ठावान कृष्ण भक्त कवि हैं-

''छांडि के घनश्याम और धरूँ जो ध्यान
फाड़ डारो छाती मेरी कठिन कुठार सों।''[8]

उनकी कविता में ज्ञान एवं वैराग्य प्रधान स्वर विशेष हैं। इन्होंने पद शैली के साथ-साथ लघु प्रबन्धात्मक ग्रंथों की भी रचना की है। इनके हिन्दी ग्रंथों में ***'विवेक चिंतामणि', 'सत्संग शिरोमणि', 'गुरु चौबीसी', 'पंचरत्न', 'कपिल गीता', 'उत्सवामृत', 'अवधूत गीता', 'भागवत भाषाटीका', 'गुण विभाग', 'मुकुन्दबावनी', 'नारायण चरितम्', 'वासुदेव चरितम्', 'नारायण कवचम्', 'नारायण गीता'*** आदि उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन हिन्दी काव्यरूपों में से इन्होंने साखी, पद, चौबीसी, बावनी, गीता, चिंतामणी आदि प्राय: सभी प्रमुख रूपों का व्यवहार किया है। 'पंचरत्न' में ज्ञान, ध्यान, ज्ञान, विवेक व वैराग्य को साधना की दृष्टि से रत्न की भाँति मूल्यवान बताया है। 'कपिल गीता' और 'अवधूत गीता' दोनों में इनकी ज्ञान व वैराग्य के प्रति रुचि का बोध होता है। 'मुकुन्दबावनी' में इन्होंने स्वामी सहजानन्द जी की वन्दना, जन्म, कार्य, माहात्म्य, गुण, स्वभाव आदि का वर्णन किया है। इनके कीर्तन पदों का संकलन 'उत्सवामृत' तथा 'मुक्तानन्द कीर्तन' में किया गया है। यद्यपि स्वामी नारायण सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव वैष्णव सम्प्रदायों में विकसित शृंगार व विलासिता के प्रत्याख्यान स्वरूप हुआ था तथापि सम्प्रदाय के कवियों ने भी श्रीकृष्ण के प्रेम व शृंगार के विपुल पदों की गोपी भाव से रचना की है।

इनके 13 ग्रंथों एवं स्फुट पदों का प्रकाशन ***'मुक्तानन्द काव्यम्'*** के नाम से हुआ है। इनके ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य सम्बन्धी रचनाओं में संस्कृत निष्ठ भाषा मिलती है-

''साधन, आतम दर्शके, ज्ञानजोग अरू कर्म।
उभय में निष्ठावान है, जानि अलौकिक मर्म।।''[9]

ब्रह्मानन्द स्वामी (सन् 1772-1832 ई0)

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के परम विद्वान एवं श्रेष्ठ कवियों में ब्रह्मानन्द स्वामी का

स्थान अग्रगण्य है। इन्होंने भुज की ब्रजपाठशाला में विधिवत् काव्यशास्त्रादि की शिक्षा प्राप्त की थी।[10]

इनका जन्म आबू की तलहटी में डुंगरपुर के खाण नामक गाँव में सन् 1772 ई0 में हुआ। इनका बचपन का नाम लाडू बारोट, जवानी में श्री रंगदास और उत्तरावस्था में स्वामी सहजानन्द से परमहंस की दीक्षा पाकर 'ब्रह्मानन्द' के नाम से सम्प्रदाय के एक मूर्धन्य भक्त कवि के रूप में विख्यात हुए। इन्होंने अपनी मेधा और बहुश्रुतता का विनियोग करके प्रबन्धात्मक एवं मुक्तकात्मक विपुल काव्य-रूपों की रचना करके सम्प्रदाय के साहित्य की श्री वृद्धि की है।

ब्रह्मानन्द ने जो विपुल परिमाण में साहित्य-सर्जन किया है उसमें से प्रमुख ग्रंथों के रूप में ***'सम्प्रदाय-प्रदीप', 'सुमति-प्रकाश', 'नीति-प्रकाश', 'धर्म-प्रकाश', 'छन्द रत्नावली', 'उपदेश-चिंतामणि', 'विवेक-चिंतामणि', 'उपदेश दीपक', 'ब्रह्मविलास'*** तथा करीब 8000 पद उल्लेखनीय हैं। 'सम्प्रदाय-प्रदीप' में श्री मद् उद्धव स्वामी श्री रामानुज एवं गुरु परम्परा का निरूपण होने से सम्प्रदाय में विशेष आदर एवं महत्त्व है। 'ब्रह्मविलास' की रचना सन् 1827 ई0 में की गई। इसमें सवैया, छप्पय, मनहर, कुंडलिया आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ की विषयवस्तु को विभिन्न अंगों में विभाजित किया है।

इन्होंने गोपियों के प्रेमलक्षणा भक्ति के पद लिखे हैं। ब्रह्मानन्द जी के अनुसार प्रगट अवतार की उपासना से ही मुक्ति मिलती है और प्रगट हरि के चरणों में गया और काशी के दर्शन होते हैं-

''प्रगट स्वरूप उपासी, धन सो प्रगट स्वरूप उपासी,
सब तीरथ हरि-चरने समझे, कोटि गया अरु काशी।
नर-तन धर नट-रूप निरन्तर, बिचरत है जुग मांई;
महा मनोहर अतुलित मूर्ति, ब्रह्मानन्द मन भाई।''[11]

ब्रह्मानन्द की वाणी में ज्ञान-वैराग्य के शुष्क विषयों का भी रससिक्त मार्मिक वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए ब्रह्मानन्द द्वारा निरूपित कृष्ण के पद दृष्टव्य हैं-

''आलीरी आय बस्यो दृग नंददुलारो।
बैठत चलत जागत सुपन में, नेक न होवत न्यारो।
मंद-मंद मुख ह्रास मनोहर, नैन कमल अवतारो,
ब्रह्मानन्द को नाथ रंगीलों, दिल की जानन हारो ॥''[12]

निस्सन्देह इनमें काव्यत्व उत्तम कोटि का था और भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार

था। इनके पद श्रेष्ठता की दृष्टि से भालण, प्रेमानन्द और दयाराम का स्मरण कराते हैं।

प्रेमानन्द 'प्रेमसखी' (सन् 1779-1845 ई0)

मुक्तानन्द एवं ब्रह्मानन्द के पश्चात् स्वामी नारायण सम्प्रदाय के तीसरे महत्त्वपूर्ण भक्त कवि हैं- प्रेमानन्द 'प्रेमसखी'। ये बचपन में अनाथ होकर दर-दर की ठोकरें खाते रहे। इनके बारे में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। युवावस्था में वैरागी साधु-सन्तों के साथ घूमते वडोदरा जिले के 'दोरा' गाँव में आए तब इनका संपर्क स्वामी सहजानन्द जी से हुआ। उन्होंने इन्हें स्वमार्ग की दीक्षा दी और अध्ययन की व्यवस्था कर दी। बचपन से ही गायन विद्या में निपुण थे। शास्त्रीय एवं सुगम दोनों पद्धतियों के गीत गाते थे। इन के प्रभावपूर्ण गायन से प्रभावित होकर सहजानन्द जी ने उन्हें 'प्रेमसखी' नाम दिया और तभी से प्रेमानन्द अपनी रचनाओं में 'प्रेमसखी' की छाप देने लगे। इनके 'हो रसीया मैं तो शरण तिहारी, मैं तो बिरद भरोंसे बहुनामी' एवं 'बिसर न जाओ मेरे मित' इतने सुन्दर हैं कि गाँधी जी की 'आश्रम भजनावली' में भी इनको स्थान मिला है।

सम्प्रदाय के अन्य कवियों के सम्पर्क से तथा परिवेश से और घुमक्कड़ जीवन से अनेक भाषाओं के मर्मज्ञ बने थे। ये संस्कृत में भी रचना कर लेते थे। ब्रजभाषा में तो इन्होंने विपुल पद-रचना की है।

इनके बारहमासी और विरह के पद सर्वोतम हैं। अच्छा संगीतज्ञ होने से इन्होंने पदों को विभिन्न रागों में बद्ध किया है। उन्हें स्वयं बड़ी मधुरता से गाया भी है।

ब्रज भाषा में रचित श्याम गोपियों के विरह सम्बन्धी एक पद का उदाहरण निम्नलिखित है-

''कैसे बीते दिन रतियाँ, श्याम बिन कैसे बीते दिन रतियाँ।
शिर पर सोक भई अब कुबरी, लिखी लिखी पठवती पतियाँ।
सवतीय दु:ख सह्यो नहीं जाये, जरत रेन दिन छतियाँ।
दे विश्वास अवधि करी बिछरे, कही कपट की बतियाँ।
प्रेमानन्द के नाथ की पहिले, जानी सकी नहीं धतियाँ।।''[13]

प्रेमानन्द को शुद्ध भक्ति के उद्गारों के कारण उच्चकोटि का भक्त कहा जाता है। इन्होंने ब्रज एवं गुजराती के अतिरिक्त संस्कृत, पंजाबी, भोजपुरी, राजस्थानी एवं मराठी भाषाओं में भी काव्य-रचना की है। इनकी रचनाएँ ***'प्रेमानन्द काव्य'*** के नाम से प्रकाशित है। संगीतात्मकता के कारण इनके पद अत्यन्त लोकप्रिय बन गए है। इन्होंने ब्रज भाषा में सात हजार पदों की रचना की है।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अन्य मध्यकालीन संत कवियों में हिन्दी में अनेक भक्तिपरक पदों के रचयिता ***भूमानन्द*** (1768 में जन्म), ***'ऐश्वर्य प्रकाश'*** नामक हिन्दी प्रबंधकाव्य की 1819 में रचना करने वाले ***मंजुकेशानन्द***, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला में कवि दीक्षा प्राप्त ***अविनाशनन्द*** (सन् 1734 : 1862 ई0) आदि अपने-अपने साहित्यिक प्रदान की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सम्प्रदाय के आधुनिक कालीन संत कवियों में ***देवानन्द स्वामी*** (सन् 1902) विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि 'श्रवणाख्यान' के रचयिता दलपतराम बचपन में इन्हीं से प्रभावित होकर इनके शिष्य बन गये थे।

दलपतराम को ब्रजभाषा कविता लेखन में प्रवृत करने का श्रेय देवानन्द स्वामी को है। देवानन्द स्वामी के अनुसार परमधाम में कृष्ण मुरारी मिल जाते है और वह सदा सुखकारी है-

"हरि-धाम सदा सुखकारी,

एजी रवि-शशि को परकाश न पोचत, अनल रयो बल हारी।[14]

गुजरात में हिन्दी साहित्य के विकास में प्रबंधात्मक एवं विविध मुक्तकात्मक रचनाओं और हजारों की संख्या में हिन्दी ब्रज के भक्ति परक एवं संगीतात्मक पदों के रचनाकार के रूप में स्वामी नारायणी संत कवियों का प्रदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रणामी सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

प्रणामी सम्प्रदाय मूलतः गुजरात की ज्ञानभक्ति पूर्ण भूमि की पैदाइश है। इसके मूल प्रवर्तक स्वामी निजानन्द या देवचन्द्र मेहता है। लेकिन इसके प्रचार-प्रसार का श्रेय स्वामी प्राणनाथ को मिलता है। इस सम्प्रदाय को निजानन्दी सम्प्रदाय और प्रणामी सम्प्रदाय के अतिरिक्त धामी पंथ अथवा धामी सम्प्रदाय[15] मेहराज पंथ[16], चाकला पंथ[17], खिजड़ा पंथ[18], प्राणनाथी सम्प्रदाय[19], परनामी सम्प्रदाय[20], परिणामी सम्प्रदाय[21] के नाम से भी प्रसिद्धि मिली है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र जामनगर (नौतनपुरी), सूरत(मंगोलपुरी) और पन्ना (पद्मावती पुरी) है। गुजरात में सामान्यतः पाटीदार, कायस्थ, बनिया, राजपूत, बढ़ई, दरजी, कोली इत्यादि जातियों में इस सम्प्रदाय का अधिक प्रचार है। प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी एक दूसरे से मिलने पर हाथ जोड़ कर 'प्रणाम जी' कहते हैं।

मूलतः यह सम्प्रदाय श्री कृष्ण के प्रति सखी या गोपी भाव से हार्दिक प्रेम निरूपण की आधार शिला पर अवस्थित है और यही कारण है कि प्रस्तुत सम्प्रदाय के अंतरंग शिष्यों को सखी की उपाधि से विभूषित किया जाता है। प्राणनाथ स्वयं 'इन्द्रावती' सखी हैं। प्रणामी सम्प्रदाय के अक्षरातीत ब्रह्म श्री राज राजेश्वर श्री कृष्ण हैं।

प्रणामी सम्प्रदाय के उद्भव एवं विकास के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ उत्तरदायी रही।

राजनीतिक परिवेश

मुगल शासक औरंगजैब (शासन प्रारंभ सन् 1659 ई0 से) ने मुस्लिमेतर प्रजा पर आर्थिक दबाव डालकर भी इस्लाम का प्रसार किया।

बुंदेलखंड के बुंदेला मुगल शासक के विरोधी थे। प्रारंभ से ही जब-तब मुगल शासन से मुक्ति के लिए प्रयासरत रहे बुंदेलों का नेतृत्व जब छत्रसाल के पिता चम्पतराय के हाथ आया तब औरंगजैब ने 1661 में मालवा आदि के राजाओं की सहायता से दबा दिया।

पिता चम्पतराय की मृत्यु के पश्चात् छत्रसाल ने शिवाजी की प्रेरणा से 1675 ई0 के लगभग पन्ना पर अधिकार जमा लिया। अपनी विद्रोही प्रवृति और मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने से छत्रसाल की वीरता प्रसिद्ध हो गई। छत्रसाल की इस ख्याति ने ही स्वामी प्राणनाथ को बुंदेलखण्ड की ओर जाने को प्रेरित किया हो यह संभावित है।[22] ऐसे अशांत और अत्याचारपूर्ण वातावरण में मुस्लिमेतर भारतीय प्रजा को जीवित रहने की शक्ति भक्तों और संतों की समभाव, प्रेम और समन्वयवाद युक्त वाणियों ने दी है।[23]

सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय सांस्कृतिक धारा भी कई परिवर्तनों और प्रतिक्रियाओं को साथ में लेकर बह रही है। अनेक विदेशी जातियों ने इस देश पर आक्रमण किये पर इनके आक्रमणों और शासन ने यहाँ की मूल सांस्कृतिक धारा को नष्ट नहीं किया। भारतीय संस्कृति की दूसरी संस्कृतियों को अपने में आत्मसात् करने की शक्ति रही है। मुस्लिम आक्रमणों ने इस शक्ति को मन्द कर दिया। मुस्लिम संस्कृति के साथ चिरकाल तक सम्पर्क में रहने के कारण इस देश के निवासियों के सामाजिक जीवन-कला, शिक्षा, रहन-सहन, आदि-तथा धार्मिक जीवन व विचारों पर उसका प्रभाव पड़ा।

सामाजिक परिवेश

भारत में चन्द्रगुप्त, उसके बाद हर्ष तत्पश्चात् अकबर के शासन काल में सुखमय, शांत और एकता पूर्ण जीवन तत्कालीन हिन्दू समाज में रहा। अकबर से पहले समाज में विषाद, सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के प्रति भय व्याप्त था। अकबर के समय में भारत में वर्ण व्यवस्था, छुआछूत, ऊँच-नीच आदि बुराइयाँ विद्यमान थीं। अतः उस समय नीची जाति के लोग स्वेच्छा से इस्लाम अपनाने लगे थे। जबकि औरंगजेब के शासन के समय अराजकता, लूट, अकाल आदि यातनाओं के साथ-साथ औरंगजेब की धर्मान्धता से भी गुजरात की जनता को

सामना करना पड़ रहा था। मुस्लिम मूर्तिपूजा के विरोधी थे पर फिर भी अनेक मन्दिरों, ललित कलाओं, वास्तुकला का विकास सहिष्णु बादशाहों के शासन के समय होता रहा। किन्तु औरंगजेब ज्यों-ज्यों वृद्ध होता गया, वह संगीत का विरोधी होता गया और दरबारी संगीतकारों को उसने निकाल दिया।(24)

धार्मिक परिवेश

प्राणनाथ के उदय से पहले भारत वर्ष में हिन्दू धर्म पर संकट के बादल छा गए थे। इस युग तक आते-आते भारतीय चिन्तन तथा साधना के प्रवाह की अनेक धाराएँ विकसित हो चुकी थी। मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही भारत में कई धार्मिक सम्प्रदाय कई पारस्परिक विरोधों के कारण प्रकट हो चुके थे।

प्राणनाथ पूर्व और उनके समकालीन पंथों में राधावल्लभी, सतानी, महापुरुषिया, रामावत, वारकरी, नरसिंह सम्प्रदाय, रामदासी पंथ, कबीर पंथ, रैदासी पंथ, परब्रह्म सम्प्रदाय, सतनामी, सत्यपथ, महानुभाव पंथ, निरंजन मत और बाउल सम्प्रदाय प्रमुख थे।

प्राणनाथ एवं प्राणनाथ पूर्व प्रणामी साहित्य

देवचन्द्र मेहता :

प्रणामी सम्प्रदाय के मूल पुरूष देवचन्द्र मेहता थे। पिता का नाम मत्तू मेहता तथा माता का नाम कुँवर बाई था। वे जाति के कायस्थ थे-

''कुँवरबाई माताको नाम, उत्तम कायस्थ उमरकोट ग्राम।1

आय श्री देवचन्द्र जी नौतनपुरी, सुख सबों को देने देह धरी।।(25)

बचपन से ही इनकी मनोवृति धर्म, अध्यात्म, चिंतन-मनन की थी। फलतः भुज ने विद्यमान विविध धर्म-सम्प्रदायों के साधु-संतों से सत्संगार्थ मिलते रहते थे। कहते है विष्णु सम्प्रदाय के किसी महात्मा हरिदास का शिष्यत्व स्वीकार करके 14 वर्ष तक श्रीमद्भागवत के श्रवण अध्ययन से श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, फलतः प्रेमलक्षणा भक्ति का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण के प्रति अपना श्रद्धा प्रेम निवेदन करते रहे। इनका दार्शनिक सिद्धान्त 'स्वलीलामृत ब्रह्म' है। इनके अनुयायी वर्ग में उनके बड़े बेटे बिहारी जी और सूरत निवासी प्राणनाथ अग्रगण्य हैं।

गुरु देवचन्द्र जी के सृष्टि में जन्म के सम्बन्ध के बारे में प्रणामी मतानुयायियों की साम्प्रदायिक मान्यता है कि पूर्ण ब्रह्म की शक्तियों को माया से छुड़ाने के लिए तथा उन्हें जाग्रत करने के लिए श्री कृष्ण ने अपनी अंगजा श्री श्यामा जी को श्री देवचन्द्र जी के रूप में भेजा।(26)

इस सन्दर्भ में प्राणनाथ जी ने कहा है-

''रास खेलत उमेदा रहिया तित, सो ब्रह्म सृष्टि सब आँईया ईत।
यामे सुरत श्री श्यामजी की सार, मत्तू महेता घर अवतार।।''[27]

गुरु देवचन्द्र जी द्वारा मूल तारम्यवाणी लिखी गई। इनकी रचना सं0 1678[28] के बाद की गई होगी। उनका धाम गमन भाद्रपद शुक्ल 14 बुधवार संवत् 1712 को हुआ। 40 वर्ष की आयु में उनको अन्तिम बोध हो गया।[29]

प्राणनाथ

धामी अथवा प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ का जन्म सौराष्ट्र के हालार प्रदेश जामनगर में लोहाणा ठक्कर परिवार में सन् 1619[30] में हुआ था। इनका बचपन का नाम मेहराज था। ***'लालदास वितक'*** के आधार पर इनका जन्म संवत् 1675 में भादों वदी चौदस के रविवार को माना जाता है। यथा

''संवत् सोलसौ पंचोतरे, भादोंबदी चौदस नाम।
पोहारे दिन बार रवि, प्रगटे धनी श्री धाम।।''[31]

ये सम्प्रदाय में ***महामति, इन्द्रावती*** और ***श्री जी साहब*** आदि नामों से जाने जाते हैं। बारह वर्ष की आयु में जामनगर में इन्होंने देवचन्द्र मेहता से 'तारतम्य मंत्र' की दीक्षा लेकर उन्हें अपना गुरु माना।

गुरु देवचन्द्र मेहता द्वारा स्थापित सिद्धान्त को अपना कर प्रणामी सम्प्रदाय का विकास प्राणनाथ जी द्वारा हुआ। बुंदेलखण्ड, नेपाल, असम, उड़ीसा, मारवाड़, सूरत, जामनगर, पन्ना, काठमांडु, दार्जिलिंग, वाराणसी, इलाहाबाद आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख धाम है।

राजस्थान, बुंदेलखण्ड, दिल्ली, अरबस्तानादि (मसकट) विभिन्न शहरों की यात्रा करने के कारण ये विभिन्न भाषाओं के मर्मज्ञ बन गए थे। फलतः इन्होंने विभिन्न भाषाओं में तथा सभी भाषाओं के समन्वय से 'हिन्दुस्तानी' भाषा में कृतियों का निर्माण किया। इन्होंने बड़े गर्व से कहा था-

''सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख।
अब कहूँ भाषा में किनकी, यामें भाषा तो कै लाष।
बोली जुदी सबन की और सबका जुदा चलन।
सब उरझे नाम जुदे घर, पर मेरे तो केहेना सबन।
बिना हिसाबें बोलियाँ, मिने सकल जहान।
सबको सुगम जानके कहूँगी हिन्दुस्तान।''[32]

इन्होंने हिन्दी हिन्दुस्तानी में विपुल साहित्य की रचना की है। इनकी वाणियों को दो भागों में विभक्त किया जाता है ***(1) होशवाणी (2) बेहोशवाणी***। गुरु की प्रेरणा और विरह से उन्मत काव्य को रचित काव्य को होशवाणी कहते है। बेहोशवाणी का प्रतिनिधि ग्रंथ है ***'कुलजम स्वरूप'***। 'कुलजम स्वरूप' का मूल नाम है 'कुलजम-ए-शरीफ' अर्थात् मुक्ति की पवित्र धारा। इसे सम्प्रदाय में ***'तारतम्य सागर', 'स्वरूप साहेब', 'श्री मुख वाणी', 'निजानन्द सागर'*** आदि नामों से पहचाना जाता है।

इसमें प्राणनाथ जी के 'सनध', 'कीरतन', 'खुलासा', 'खिलवत', 'परकरमा', 'सागर', 'सिनगार', 'सिन्धी चौपाई', 'मारफत सागर', 'कयामत नामा', 'रास', 'षट्ऋतु', 'प्रकाश' आदि 14 ग्रंथों की लगभग 18000 चौपाईयाँ है।

इन रचनाओं में एक ब्रह्म की साधना के निरूपण के साथ तिलक-छापा-माला, नमाज-रोजा, हज आदि बाह्याचारों की भर्त्सना की है। इसके अतिरिक्त कतिपय संगीतात्मक पदों में राधा-कृष्ण की बाल एवं रास-लीलाओं, होरी, फाग आदि प्रसंगों तथा आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन की रहस्यभावनाओं का भी दाम्पत्य प्रतीकों के द्वारा रसात्मक वर्णन मिलता है।

प्राणनाथ ने हिन्दू-मुसलमान जातियों के ग्रंथों का अध्ययन कर, अपने विचारों का आधार ढूँढ कर दोनों जातियों के सामने मूलगत ऐक्य की घोषणा की-

''जो कुछ कह्या कतेबने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहब के, पर लडत बिना पाये भेद।।''[33]

इसके अतिरिक्त इन्होंने ईसाई, यहूदी, पारसी आदि धर्मो के पारस्परिक वैमनस्य दूर कर अपने समय में प्रचलित सभी धर्मो की मौलिक एकता सिद्ध की तथा सर्वधर्म समन्वय का स्तुत्य प्रयास किया।

इनकी मृत्यु के बारे में विद्वानों में मतभेद है। आ0 परशुराम चतुर्वेदी[34], डॉ0 नागर[35], पी0 कृष्णमूर्ति अय्यर[36] ने इनका धाम गमन का समय सं0 1751 का माना है। डॉ0 रामकुमार वर्मा ने सं0 1771 का उल्लेख किया है।[37]

प्राणनाथ जी के शिष्य एवं साहित्य

प्राणनाथ जी के शिष्यों में बुंदेलखण्ड के छत्रसाल महाराज, नेपाल के राजा रामबहादुर, लालदास जी, केशवदास, चतुरदास, मुकुन्ददास अर्थात् नवरंग स्वामी, जीवन मस्तान, धर्मदास, जुगुलदास, चेतनदास विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्राणनाथ जी के शिष्यों के दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं। एक वर्ग के अनुयायी

प्राणनाथ जी की हिन्दू धर्म ग्रंथ एवं कुरान दोनों की एकता परक विचारधारा में विश्वास रखने वाले हैं। जिनमें जीवन मस्तान (1700 में विद्यमान), धर्मदास, जुगुलदास, चतुरदास, चेतनदास विशेष उल्लेखनीय हैं।

दूसरे वर्ग के अनुयायी श्री कृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति में श्रद्धा रखने वाले हैं। स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के साथ-साथ उनके शिष्यों एवं अनुयायियों की अनेक रचनाएँ मिलती हैं। इस सम्प्रदाय में 'बीतक' की भी रचना हुई। प्रणामी सम्प्रदाय की 'बीतक' परम्परा हिन्दी जीवनी साहित्य की विधा में एक मौलिक देन के समान है।

1. स्वामी लालदास

स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में से एक स्वामी लालदास जी हैं। वे लोहाणा जाति के कुलीन व्यापारी थे। स्वामी लालदास की निम्न रचनाएँ मिलती हैं-
1) 'बडी वृत' (पद्य) 2) 'छोटी वृत' (गद्य) 3) 'मोहमदसाहब की बीतक अर्थात् माजजा' 4) 'बड़ा मसौदा' (गद्य) 5) 'श्रीमद्भागवत की टीका-अनुवाद' 6) अन्य छन्द।[38] इन सबमें 'बीतक' ही अधिक आदरणीय रही है। 'बीतक' हिन्दवी में लिखा हुआ प्राणनाथ का जीवन-सम्बन्धी ग्रंथ है। सन् 1684 ई0 (सं. 1741) में लिखा होने से यह हिन्दवी का प्रथम जीवन-चरित्र कहा जा सकता है।[39]

2. नवरंग स्वामी

इनका मूल नाम मुकुन्द तथा पिता का नाम माधवजी और माता का नाम कुँवरबाई था। ये 1648 में सूरत में जन्मे थे। प्राणनाथ जी से प्रभावित हो कर युवावस्था में ही उनके शिष्य बन गए तथा उनकी सेवा में निरत रहे। उनके (1) ***'बीतक'*** (2) ***'रससागर'*** और (3) ***'सुन्दर सागर'*** प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं। अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ हैं- ***'षट्शास्त्र', 'लीला-प्रकाश', 'गीता-रहस्य', 'गुरु-शिष्य-संवाद',*** और ***फुटकल पद***। नवरंग स्वामी कृत 'बीतक' में नवरंग के प्रश्न और प्राणनाथ जी के उत्तरों का समावेश है। इस प्रश्नोत्तर में क्षर, अक्षर और पूर्ण ब्रह्म तीनों का समावेश किया गया है। 'रससागर' में इनकी माधुर्योपासना का स्वरूप झलकता है।

3. ब्रज भूषण

स्वामी प्राणनाथ के शिष्य छत्रसाल के शिष्य थे। इनकी तीन रचनाएँ बताई जाती हैं- 1) ***'वृतान्त मुक्तावली'*** 2) ***'परात्पर दीपक' (गद्य)*** और 3) ***श्री प्राणनाथ जी का जीवन चरित्र (संस्कृत)***[40] इनका रचना काल वि.सं. 1755 का माना जा सकता है।[41] प्रणामी सम्प्रदाय की रसोपासना का स्वरूप और देवचन्द्र जी का नामोल्लेख इनके निम्नलिखित

पद में मिलता है-

''निज शिक्षा गुरु और बताई,
सो देवचन्द्र चित्त सों लाई।
अपनी सखी भाव करि लीजै,
पुरुषभाव अपनों तजि दीजै।
श्री कृष्ण चन्द्र जानौ गुरु आपन,
श्यामा निज उपासना थापन।
o o o
पुनि यह नाम मंत्र रस पीजै।''[42]

4. बख्शी हंसराज

इनका सांप्रदायिक नाम ***'प्रेम सखी'*** था। इन्होंने अत्यन्त प्रेम-माधुर्य-पूर्ण रचनाएँ की हैं। इनकी छह रचनाएँ हैं[43] - 1) ***'मिहराज चरित्र'*** 2) ***'स्नेह सागर'*** 3) ***'श्री कृष्णजू की पाती'*** 4) ***'श्री जुगुलस्वरूप विरह पत्रिका'*** 5) ***'फागतरंगिनी'*** 6) ***'चुरिहारिन लीला'***।

5. लल्लु जी महाराज - लालसखी

लल्लुजी का जन्म सं0 1890 में लगभग और सं0 1954 में मृत्यु हुई थी। प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायियों में वे ***'लालसखी'*** के नाम से जाने जाते थे। लल्लुजी के देवचन्दजी और प्राणनाथ के जीवन की गुजराती में लिखी बीतक ***'वर्तमान दीपक'*** के अतिरिक्त ***'जीवचेतवाणी', 'ईश्वर बोध सागर', 'आत्मबोध'*** और ***'श्रुति विवाह'*** अन्य ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से पूर्ण और भक्तिपूर्ण भजन और गरबे भी उन्होंने लिखे हैं।

6. महाराजा छत्रसाल

इनका रचनाकाल सं0 1730 के आसपास तथा स्वर्गवास सं0 1788 में हुआ था। इनकी मदद से प्राणनाथ स्वामी ने प्रणामी सम्प्रदाय का दूर-दूर तक प्रचार एवं प्रसार किया। महाराज छत्रसाल की रचनाओं में ***'श्री कृष्ण कीर्तन', 'श्री रामयश चन्द्रिका', 'हनुमद् विनय', 'अक्षर अनन्यजूके पत्र और तिनकौ उत्तर', 'नीतिमंजरी'*** और ***स्फुट कविताएँ*** तथा ***'राजविनोद गीतों का संग्रह', 'छत्रविलास', 'नीति मंजरी महाराज छत्रसालजू की'*** आदि काव्य-कृतियों का भी उल्लेख है।[44] एक स्थान पर उनके 'कृष्ण चरित्र' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख है।[45]

7. मुकुन्द स्वामी

मुकुन्द स्वामी स्वामी प्राणनाथ के समकालीन थे।[46] इनकी रचनाओं में 'अथज्ञान तिलक', 'अथ जागनी लीला वर्णन', 'परमधाम वर्णन', 'सुन्दर सागर' ओर 'बोध सागर' हैं।[47] इन्होंने माधुर्यभाव की भक्ति की है-

''तुम नन्दलाल! सदा के कपटी।। टेक।।
मैं जमुना जल भरन जात रही, गगरी हमरी घाट पै पटकी।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, दधि मेरो खाय बाह मेरी पटकी।
साथकी संगी पार उतर गई, नैया हमरी बीच ही अटकी।
कहत ''मुकुन्द'' रूप लोभानी, हमरी सुरति मुरति बीच अटकी।।''[48]

8. जुगुलदास

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के गुरु स्वामी जुगुलदास का नाम प्रणामी सम्प्रदाय में आदर से लिया जाता है। इनके ग्रंथों में ***'परमधाम की बड़ी वृति', 'मनमोहन रसानन्द सागर', 'छोटी और बडी पत्री तारतम की प्रणालिका', 'वैराट निरूपण', 'महाकारण'*** इत्यादि हैं। 'रसानन्द सागर' उनकी गद्य में लिखी रचना है। इनके शिष्यों में चेतनदास, चतुरदास, जीवन दास के नाम आते हैं।

9. जीवन मस्ताना

मिश्रबन्धु ने जीवन मस्ताना का रचनाकाल सं0 1757 माना है।[49] इन्होंने एक परमात्मा को सहायक बताया है। तथा ब्राह्य उपकरणों को आडम्बर माना है-

''कोई माला लै बैठे कोई अंग पखारे पानी से।
कोई आग जला आसिन पर बैठे, कोई लिए वेष भवानी से।''[50]

प्रणामी के अन्य संतों में ***केशव दास, पंचम सिंह, भट्टाचार्य जी, भीम भाई, लच्छीदास, महन्त श्री जीवराम, विहारीदास, जीवनदास गोपालदास महन्त, परमहंस गोपालदास, आनन्ददास, छज्जूदास, रतनदास, भवानी भाई, पिताम्बर दास*** आदि का नामोल्लेख मिलता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय भारतीय समाज में महत्त्वपूर्ण है। ***''प्राणनाथ व प्रणामी सम्प्रदाय इतना उदारमत वादी लगा कि बाद की दो शताब्दियों ने इसे अपनाने में संकोच रखा। जाति-पांति, छुआछूत, मूर्तिपूजा आदि बाह्याडंबरों के संकीर्ण कटघरे में बन्द हिन्दू समाज श्री प्राणनाथ और उनके विचारों को समझने की शक्ति खो बैठा''***[51]

प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी को मृत्यु के बाद समाधि दी जाती थी, इसलिए इस सम्प्रदाय को इस्लाम धर्म सम्प्रदाय होने का भ्रम फैलाया गया था।[52] इन भ्रमों के फलस्वरूप ही सन् 1880 और 1908 में नेपाल से इस सम्प्रदाय को निर्वासित कर देने का हुक्म किया गया था।[53]

किन्तु बीसवीं शताब्दी के मध्य से इस सम्प्रदाय ने नया जीवन लेना शुरू किया है और उसने लोगों का ध्यान आकृष्ट करना शुरू कर दिया है। जामनगर के खीजड़ा मंदिर में समुदाय का सारा हस्तलिखित साहित्य सुरक्षित है। इसके प्रकाशित होने पर हिन्दी साहित्य के विकास में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रदान पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है।

जैन धर्म और हिन्दी साहित्य

गुजरात जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रहा है। बहुत प्राचीन समय से गुजरात में जैन धर्म के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। जैन धर्म के इस प्रसार-प्रचार के कारण गुजरात में जैन कवियों ने 17वीं सदी तक अपभ्रंश में विपुल रचनाएँ की हैं।[54] जैन धर्म ऋषभदेव (आदिनाथ) को प्रथम तीर्थंकर मानता है। सत्यकेतु विद्यालंकार के मतानुसार वर्धमान महावीर जैन धर्म का अंतिम तीर्थंकर था।[55] लेकिन, तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक लोग जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को संशोधक। पार्श्वनाथ, महावीर के 200 वर्ष पूर्व हुए थे। महावीर गौतम बुद्ध के समसामयिक थे...।[56] श्री महावीर स्वामी ईसा मसीह से पाँच शताब्दी पहले हुए थे। भगवान महावीर ने जाति-पाँति तथा तत्कालीन समाज में व्याप्त कर्मकाण्डों की व्यर्थता सिद्ध करते हुए अहिंसा को मुख्य स्थान देकर सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य पर बल दिया। जैन धर्म का मूल सिद्धान्त ही अहिंसा है। जैन धर्म सम्प्रदाय के दो प्रमुख वर्ग हैं- श्वेताम्बर और दिगम्बर।

प्रारंभ से ही जैनों का सम्बन्ध गुजरात से रहा है। जैन धर्म के 21वें तीर्थंकर नेमिनाथ (कृष्ण के पैतृक भाई) ने गिरनार पर समाधि ली थी। वे सौराष्ट्र के थे। गुप्त राजाओं के बाद गुजरात पर वलभी के मैत्रकों ने सन् 470 से 789 ई0 तक शासन किया। 'दश कुमार चरित' और 'कथा सरित सागर' में वलभी का समृद्ध नगर के रूप में उल्लेख है। 5वीं शताब्दी में बीसवें तीर्थंकर सुव्रत का शकुनिक विहार भडौच में था। 5वीं शताब्दी में ही जैन-ग्रंथों को एकत्रित करने के लिए नागार्जुन द्वारा वलभी में एक सभा हुई थी। जैन साधु-ओं की दूसरी सभा देवर्द्धिगणि द्वारा वलभी में हुई थी जिसमें जैन धार्मिक ग्रंथों का लेखन हुआ और सम्पूर्ण घटना को 'पुस्तकारोहण' की संज्ञा दी गई। वलभी के शासन काल में नागार्जुन, मल्लवादिन और देवर्द्धिगणि विशिष्ट जैन विद्वान थे। ईसा सन् 5वीं शताब्दी में वलभी

के राजा शिलादित्य और वृद्धपुर (बड़नगर) के राजा ध्रुवसेन के जैन धर्मावलम्बी होने का उल्लेख भी मिलता है। 589 ई0 के कुछ समय पूर्व जैन साधु भद्रबाहु द्वारा रचित 'वसुदेव-हिण्डी' में अपभ्रंश के प्राचीन रूप मिलते हैं। 5वीं से 10वीं शताब्दी के बीच 'तरंगवती' (प्राकृत प्रेमकाव्य), विमल का 'पउमचरिअम्' (जैन महाराष्ट्र प्राकृत) हरिभद्रसेन कृत 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' (महाराष्ट्र प्राकृत), उद्योतनसूरि कृत 'कुवलयमाला' (झालोर में 779 ई0 में रचित चम्पू काव्य), जिनसेन सूरि कृत हरिवंश पुराण (ई0 सं0 783 में रचित), सिद्धर्षि कृत 'उपमिति-भव प्रपञ्च-कथा' (906 ई0 में रचित), शिलादित्य कृत प्राकृत ग्रंथ 'चौपन महापुरुष चरिअम्', विजय सिंह का 'सुन्दरी कथा', महेश्वर सूरि का 'कालकाचार्य कथानक' तथा हरिषेण का 'बृहत्कथा कोश' आदि महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथों की रचना की गई।

धक्कड़ वंश के दिगम्बर जैन धनपाल ने (हेमचन्द्र से लगभग 200 वर्ष पूर्व) 22 संधियों में 'भविस्सत्त कहा' अथवा 'पंचमी कहा' की रचना की जो अब तक प्राप्त अपभ्रंश की सर्वोतम लोक-वार्ता है। लगभग दसवीं शताब्दी में चन्द्रमुनि ने 53 संधियों में कथाकोश की रचना की। राजाभोज द्वारा प्रेरित होकर 'तिलक मञ्जरी' की रचना करने वाले धनपाल ने 'पाइयलच्छीमाला' नामक प्राकृत कोश की भी रचना की। ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास एक श्वेताम्बर जैन महेश्वरसूरि ने 35 दोहों की 'संजम मंजरी' की रचना की।

वनराज चावड़ा ने सन् 745 ई0 में पाटन की स्थापना की। पाटण की वास्तविक उन्नति चालुक्य राजाओं के समय से हुई। हेमचन्द्र का जन्म 1089 ई0 में हुआ था और वे सन 1173 तक जीवित रहे। हेमचन्द्र से कुछ समय पहले अभय देव सूरि ने पार्श्वनाथ की प्रशंसा में 33 गाथाओं वाले 'जयतिहुअण' नामक ग्रंथ की रचना की। साधारण (कवि) ने सं0 1123 में 'विलासवइ कहा' की रचना की। हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्र देव ने सं0 1160 में 16 हजार पदों का अपभ्रंश काव्य 'शांति नाथ चरित्र' तथा 'सुलसाख्यान' काव्य की रचना की। हेमचन्द्र के पूर्व की रचनाओं में 'पडसिरिचरिउ' (धाहिल कृत), जिन दत्त सूरि कृत तीन रचनाएँ, पल्ह कृत 'पट्टावली' आदि है। हेमचन्द्रचार्य के समकालीन कवियों तथा रचनाओं में वादिदेवसूरि कृत 'गुरुस्तवन' तथा लक्ष्मणगणी कृत 'सुपासनाह चरित्र' (प्राकृत भाषा में) आदि हैं।

जैन आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं महान् पंडित माने जाते है। उन्हें 'अपभ्रंश का पाणिनी' भी कहा गया है। उन्होंने ***'अनेकार्थ संग्रह', 'अभिधान चिन्तामणि', 'छन्दानुशासन', 'काव्यानुशासन', 'निघण्टुशेष' (आयुर्वेद ग्रंथ), 'योग शास्त्र' (योग सम्बन्धी), 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरूषचरित'*** नामक ग्रंथों की रचना की। आचार्य हेमचन्द्र का वास्तविक नाम चांगदेव था। वे धन्धूका के मोढ वाणिक थे। इस समय गुजरात का प्रसिद्ध

सम्राट सिद्धराज जयसिंह (सन् 1049 से 1143 ई0) का शासन था जिसने 50 वर्षो तक राज किया। सम्वत् 1161 में वे सिद्धराज के सम्पर्क में आए। मालवा के राजा भोज के साथ प्रतिद्वन्द्विता के कारण गुजरात में विद्वानों का आश्रयदाता बन कर राजा सिद्धराज जयसिंह ने हेमचन्द्राचार्य को 'सिद्ध हेम' लिखने के लिए प्रेरित किया। सिद्धराज ने उसकी प्रतिलिपियाँ करा भारत के विभिन्न भागों में भेजी। उसका परवर्ती कुमारपाल (1146-1173 ई0) भी प्रसिद्ध शासक था। इन दोनों राजाओं के शासन काल में जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई।

हेमचन्द्र के अनेक शिष्य थे। जिनमें से रामचन्द्र, गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, वर्द्धमान गणि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, यशस्चन्द्र तथा बालचन्द्र प्रमुख है। उस काल में हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव था।

हेमचन्द्र के समकालीन कवि हरिभद्र सूरि ने 'नेमिनाहचरिउ', 'षट्कर्म प्रवेश' की रचना की। 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में जयमंगल सूरि ने 'महावीर जन्माभिषेक' की और जिन प्रभसूरि ने अनेक छोटे ग्रंथों की रचना की। उनके शिष्यों में से एक ने 'नर्मदासूरि कथा' तथा 'गौतम स्वामी चरित्र' की रचना की। मेरुतुंग ने सं0 1361 में 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' की रचना की।

वघेला शासकों के दो प्रमुख प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल थे जो महान प्रशासक, कलाप्रेमी, अच्छे विद्वान थे। अतः शिक्षा, राजनीति और युद्धकला में भी जैनों ने अच्छी प्रगति कर ली थी।

तेरहवीं शती में वनराज चावड़ा, सोलंकी राजा शिलादित्य और वस्तुपाल तथा तेजपाल जैसे मन्त्रियों ने जैनधर्म और साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। जैन धर्म का यह उत्कर्ष काल था।[57] इस समय जैन धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण से गुजरात में देलवाड़ा, शेत्रुंजय, गिरनार, पाटन, सिद्धपुर वड़नगर और मोढेरा में कलात्मकता से परिपूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।

13वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण से पहले गुजरात के पुस्तकालयों में जैन धर्म के मूल्यवान ग्रंथ थे। अन्तिम वघेला शासक कर्ण था। सन् 1297 में अलाउद्दीन खिलजी ने उसे परास्त कर दिया। विदेशी आक्रमणकारियों ने लूट-खसोट, मंदिरों को तोड़ना शुरू कर दिया। जैन साधुओं ने अपने धार्मिक ग्रंथ-भंडारों को भू-गर्भ में छुपा दिया। अब सामाजिक और धार्मिक उत्सवों के बीच साहित्य-सृजन होने लगा। जिन राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया उनका यशोगान किया गया। जैन साधुओं ने अपने रासो और प्रबन्धों में मनोरंजक वर्णन और धार्मिक शिक्षाओं-दोनों का सम्मिश्रण करने का प्रयत्न

किया। इस प्रकार का साहित्य लगभग 300 वर्षों तक चलता रहा।

मुस्लिम आक्रमणों ने 'अनहिलवाण' गुजरात को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अलाउद्दीन खिलजी के गुजरात विजय (सं0 1353) के बाद 100 वर्षों तक दिल्ली सुल्तानों ने शासन किया। दिल्ली के सुल्तानों का शासन कमजोर होने पर सन् 1411 ई0 के बाद गुजरात का सूबेदार जफर खाँ स्वयं सुल्तान बन बैठा। इन मुस्लिम शासकों ने चौदहवीं शती के अंत तक मंदिरों को तोड़ कर गुजरात की भूमि पर अनेकों मस्जिद खड़ी की। खंभात की जामी मस्जिद (सन् 1325), ईदगाह (सन् 1381) भड़ौच की जामी मस्जिदें (सन् 1326) और धोलका की जामी मस्जिद (सन् 1361) उस समय की मस्जिदें हैं।

डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार अब तक ज्ञात एवं उपलब्ध रासो काव्यों में भरतेश्वर बाहुबलि रास हिन्दी का प्राचीनतम काव्य है।[58]

रासो साहित्य के अन्तर्गत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' (सन् 1184 ई0), 'पंचपंडवरास' (सं0 1410), 'बुद्धिरास', 'रेवन्तगिरि रासु' (1231 ई0 में विजयसेन सूरि द्वारा रचित), अम्बदेव सूरि कृत 'समरा रासु' (सन् 1315 ई0), 'जम्बूस्वामी रास' (1209 ई0), 'पेथड रास', 'कछूली रास' (1306 ई0), 'चन्दनबाला रास' (1200 ई0), 'जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास' (1313) आदि प्रमुख रासो काव्य रचे गए।

रासो काव्यों की भांति फागु काव्यों की भी रचना हुई। जिन पथ सूरि कृत 'सिरिथुलि भद्दफाग' (सं0 1333 के लगभग), 'नेमिनाथ फागु' (सं0 1349 के आसपास), अज्ञात कवि द्वारा रचित 'जम्बूस्वामी फाग' (सं0 1430 में) 'जिनचन्द्र सूरि फाग' (सं0 1390 में रचित), 'थूलिभद्द फाग' (सं0 1409 में हलराज द्वारा), 'जिराउला पार्श्वनाथ फाग' (सं0 1432 में मेरूनन्दन द्वारा) के अतिरिक्त 'रंगसागरनेमिनाथ फाग', 'सुरंगाभिधाननेमि फाग', 'नेमिश्वर चरित फाग', 'देवरत्नसूरि फाग' तथा 'हेमन्त सूरि फाग' आदि अनेक फागु है। इनमें से कुछ अप्रकाशित हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले हीरानन्द सूरि ने एक रचना 'विद्याविलास पवाडो' (सं0 1485) रचा।

गुजरात में जैन धर्म के साहित्य का भंडार प्राचीन समय से ही समृद्ध रहा है। जैन कवियों ने अहिंसा, वीतराग और दयापूर्ण जीवनयापन रीति, गुरुभक्ति एवं जीवनोपदेश के कारण नीति, सदाचार, ज्ञान तथा भक्ति एवं शांत रस-पूर्ण साहित्य का विपुल सर्जन किया। हेमचन्द्राचार्य से लेकर नरसिंह मेहता के सर्जन काल तक हिन्दी में रासो, चउपई, फागु एवं कथादि काव्यों में शालिभद्र सूरि, हरिप्रभ सूरि, विनयचन्द्र सूरि, राजशेखर सूरि, जयशेखर सूरि, माणिकचन्द्र आदि प्रधान हैं।

15वीं शताब्दी के जैन साहित्य भण्डार को समृद्ध करने में सोमसुन्दर गिरि और उनके शिष्यों का बहुत योगदान रहा। 'शालिभद्ररास' और 'गौतम पृच्छा' (साधुहंस द्वारा रचित); 'चिहुंगति' (वस्तिग द्वारा); 'जम्बूस्वामी विवाहलो', 'कलिकालरास', 'मुनिपतिचरित्र' आदि जैन काव्य इस शताब्दी में मिलते है।

नरसिंह महेता के समकालीन जैन कवि एवं श्रावक देपाल गुजरात में विचरण करते तथा काव्य-रचना करते थे। उन्होंने 'जावड-भावड रास', 'रोहणीया चोरनो रास' तथा कुछ अन्य ग्रंथों की रचना की। इस शताब्दी में 'सुदर्शन श्रेष्ठि रास' (संघविमल), 'नलदवदंती रास' (ऋषिवर्धन) जो नल-दमयंती की कथा पर आधारित है, 'धन्ना रास' (मतिशेखर) इसी प्रकार के अन्य रास और विवाहलो आदि की भी रचना हुई। कुमार पाल, वस्तुपाल और तेजपाल पर ऐतिहासिक रासो काव्यों की भी रचना हुई। लोक वार्ताओं में, विशेषतत: विक्रम और उनके सिंहासन की, रचना हुई।

15वीं शताब्दी से जैन भट्टारक कवियों की भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। 15वीं शती के ऐसे गुर्जर भट्टारकों में भट्टारक सकल कीर्ति और ब्रह्मजिन दास उल्लेखनीय हैं। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। फिर भी इन्होंने लोक भाषा के माध्यम से राजस्थान और गुजरात में जैन-साहित्य और संस्कृति के निर्माण में अपूर्व योग दिया। ये अणहिल पुर पट्टण के रहने वाले थे।[59] इसके शिष्य ब्रह्म जिनदास भी पाटण निवासी हूंबड जाति के श्रावक थे।[60] इनकी 60 से भी अधिक रचनाएँ हिन्दी में मिलती है जिनमें 'रामसीतारास', 'यशोध -ररास', 'भविष्यदत्तरास', 'परमहंसरास', 'हरिवंशपुराण', 'आदिनाथ पुराण' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आध्यात्मिक रास की रचना 'परमहंसरास' का एक उदाहरण देखिए-

''पाषाण मांहि सोनो जिम होई, गोरस मांहि जिमि घृत होई।
तिल सारे तैल बसे जिमि भंग, तिम शरीर आत्मा अभंग।।
कण्ठ माँहि आगिनि जिमि होई, कुसुम परिमल माँहि नेह।
नीर जलद सीत जिमि नीर, तेम आत्मा बसै जगत सरीर।।''[61]

अकबर की गुजरात विजय (सन् 1572 ई0) से सम्पूर्ण गुजरात केन्द्रीय शासन के अधीन हो गया।[62] अकबर धर्म के प्रति काफी साहिष्णु था। सन् 1582 में सम्राट अकबर के आमन्त्रण पर लाहौर में अकबर को प्रतिबोध देने गये जैनाचार्य हीरविजय सूरि, जिनचन्द्र सूरि, कनकसोम उपाध्याय, भानुचन्द्र गुजरात से ही आगरा गये थे।[63]

गुजरात में जैन धर्म के दोनों सम्प्रदाय - दिगम्बर और श्वेताम्बर को साथ-साथ

फलने-फूलने का अवसर मिला। श्वेताम्बरों का प्रधान केन्द्र रहने के साथ-साथ दिगम्बर भट्टारकों की भी नवसारी, भडौच, जांबूसर, नागौर, सूरत, बारडोली, ईडर, घोघा आदि अनेक स्थानों पर गद्दियाँ स्थापित हुई। सौराष्ट्र में गिरनार और शेत्रुंजय की यात्रा भी ये भट्टारक जैन साधु करते थे। भट्टारक संतों ने 8वीं शताब्दी से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न देखना प्रारंभ कर दिया था। सोलहवीं शती में रचना करने वाले गुजरात के हिन्दी कवि विपुल संख्या में हैं परन्तु इनकी अधिकाँश रचनाएँ अज्ञात हैं या जैन भण्डारों में दबी हैं। इस शती के प्रमुख कवियों में आचार्य सोमकीर्ति, भट्टारक ज्ञान भूषण, भट्टारक विजयकीर्ति, नयन सुन्दर, शुभचन्द्र भट्टारक, ब्रह्मविजय सागर, रत्नकीर्ति भट्टारक, सुमति सागर, चन्द्र कीर्ति, विनय समुद्र, बीरचन्द्र, आनन्दवर्धन सूरि, कनकसोम, कुशललाभ और साधुकीर्ति हैं।

नयन सुन्दर (सं0 1562-1613)

वडत पगच्छीय मानुमेरूगणि के शिष्य नयन सुन्दर की हिन्दी में कोई स्वतन्त्र कृति नहीं मिलती। ***'नलदमयन्ती रास', 'रूपचन्द कुंवर रास', 'शँखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन', 'शांतिनाथ स्तवन'*** कृतियाँ मिलती हैं। इनकी रचना का उदाहरण देखिए-

> ***"कुण वैरी कुण वल्लहो, कवण अनेरो आप,***
> ***भव अनंत ममता हुआं, नित्य नवां मा बाप।"***[64]

इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।

16वीं शताब्दी के आचार्य सोमकीर्ति रचनाओं में 'यशोधर रास' विशेष महत्त्व की रचना है, जिस पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। भट्टारक ***ज्ञान भूषण*** मूल गुजरात के निवासी थे[65] इनकी हिन्दी कृतियाँ 'आदिश्वर फाग', 'जलगालण रास', 'पोइस रास', 'षट्कर्म रास' तथा 'नागदारास' हैं।[66]

शुभचन्द्र भट्टारक (सं0 1573-1613)

ये पद्मनन्दि की परम्परा में ज्ञान भूषण के शिष्य विजयकीर्ति के शिष्य थे। भट्टारक शुभचन्द्र 16वीं शताब्दी के महान साहित्यसेवी, गणमान्य विद्वान थे। उन्हें 'त्रिविधि विद्याधर' और 'षट् भाषा कवि चक्रवर्ती' की पदवियाँ मिली हुई थी।[67] इनकी हिन्दी रचनाएँ इस प्रकार है- 'महावीर छन्द', 'विजयकीर्ति छन्द', 'गुरु छंद', नेमिनाथ छन्द', 'चतुर्विशति स्तुति', 'क्षेत्रपाल गीत', 'अष्टा हिनका गीत', 'तत्वसार दोहा' तथा स्फुट पद।[68]

इनके शिष्य भट्टारक ***सकल भूषण*** (सं0 1540-1613 वि0) के 'सुदर्शन गीत', 'नारी गीत' तथा पद मिलते हैं।

रत्नकीर्ति भट्टारक (सं0 1600-1656 वि0)

इनका जन्म संवत् 1590 के आसपास घोघानगर (गुजरात) में हुआ था। इनके गुरु अभयनंदि भट्टारक थे। रत्नकीर्ति अपने समय के अच्छे कवि थे। अब तक इनके 40 पद तथा 'नेमिनाथ फाग', 'नेमिनाथ बारहमासा', 'नेमीश्वर हिण्डोलना' एवं 'नेमिश्वर रास' आदि प्राप्त हो चुकी हैं।

इनके शिष्य ब्रह्म जयसागर (सं0 1580-1655 वि0) की 'पंच कल्याण गीत' और 'चुनडी' गीत रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।[69]

रत्नकीर्ति के शिष्य चन्द्रकीर्ति (सं0 1600 से 1660 तक) की रचनाओं में 'सोलहकरण रास', 'जयकुमार आख्यान' और हिन्दी पद मिलते हैं।[70]

भट्टारक अभयनंदि के शिष्य सुमति सागर (संवत् 1600-1665) की 10 लघु रचनाएँ मिलती हैं।[71]

कुशललाभ (सं0 1616 के आसपास)

कुशल लाभ राजस्थान और गुजरात[72] के प्रख्यात कवि रहे। ये खरतरगच्छीय अभयदेव उपाध्याय के शिष्य थे। इनकी प्रमुख कृतियों में 'माधवानल-कंदला चौपाई' 'ढोलामारू चौपाई' (सं0 1617 में), 'श्री पूज्यवाहण गीतम्', 'नवकार छंद', 'गोडी' (संवत् 1616 में), 'पार्श्वनाथ छंद', 'स्थूलिभद्र छतीसी' आदि हैं।

कुशललाभ जैसलमेर के रावल हरराज के आश्रित कवि थे। इन्होंने भक्ति, वीर और शृंगार रस में सफल कविताएँ की हैं।

वीरचन्द्र (सं0 1582 के आसपास)

लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य भट्टारक वीरचन्द्र व्याकरण, न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित होने के साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती भाषाओं के ज्ञाता थे।

इनकी आठ रचनाएँ उपलब्ध हैं। ये हैं- 'वीर विलास फाग', 'जम्बू स्वामी वेलि', 'जिन आंतरा', 'सीमंधर स्वामी गीत', 'संबोध सत्ताणुं', 'नेमिनाथ रास', 'चित्त निरोध कथा'[9] और 'बाहुबलि बेलि'।

जयवंतसूरि तपगच्छीय आचार्य विनयमण्डन के शिष्य थे। इनकी कृतियों में 'नेमिराजुल बार मास बेल प्रबन्ध', 'सीमन्धर चन्द्रउला' तथा 'स्थूलिभद्र मोहनवेलि'(सवंत् 1642) प्रमुख है। इन रचनाओं की भाषा सरल राजस्थानी मिश्रित है।

विनय समुद्र की 'मृगावती चौपाई' (रचना सं0 1602) 'पदाचरित' (सं0 1604), 'चित्रसेन पद्मावती रास' (सं0 1604) रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कवि की भाषा पर गुजराती, राजस्थानी का विशेष प्रभाव है।

धर्मवर्धन सूरि के शिष्य ***आनन्दवर्धन सूरि*** कृत 'पवनाभ्यास चौपाई' (सं0 1608 के आसपास) कृति मिलती है।

ईसा की सोलहवीं शती के अन्त में ***माल देव*** कृत 'भोज प्रबन्ध', 'पुरन्दर कुमार चौपाई'; ***ब्रह्मरायमल्ल*** कृत सात रचनाएँ-('नेमीश्वर रास', 'हनुवन्त कथा', 'सुदर्शन रास', 'प्रद्युम्न चरित्र' 'श्रीपाल रास', 'भविष्यदत्त कथा', 'निर्दोष सप्तमी व्रत कथा' (अप्राप्त); ***कनकसोम*** कृत 'जइत पदवेलि'; ***साधुकीर्ति*** कृत 'सत्तर भेदी पूजा प्रकरण', 'शत्रुंजय स्तवन' और 'नमिराजर्षि चौपाई' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं।

सुमतिकीर्ति (सं0 1620 के आसपास) की 'धर्म परीक्षा रास', 'जिनवर स्वामी वीनती', 'जिहवादंत विवाद', 'वसंत विद्या-विलास' कृतियों के साथ पद और 'शीतलनाथ गीत' रचनाएँ मिलती हैं।

इन सभी कवियों की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी हिन्दी भाषा है। ये गुजरात और राजस्थान में विहार करते रहते थे।

ईसा की 17वीं शताब्दी के प्रमुख जैन कवियों में उदयराज - उदो, समय सुन्दर महोपाध्याय, कुमुदचन्द्र, जिनराजसूरि, आनन्दघन, यशोविजय, लक्ष्मीवल्लभ, विनयविजय उल्लेखनीय हैं।

उदयराज-उदो (सं0 1631-1676)

ये खरतरगच्छीय भावहर्ष के शिष्य भद्रसार के पुत्र तथा श्रावक-शिष्य थे। इनकी निम्न रचनाएँ प्राप्त हैं-

1) 'मगन छतीसी' 2) 'गुण बावनी', 3) वैध विरहणी प्रबन्ध' 4) 'चौबीस जिन सवैया' और 5) 'उदैराजरा दूहा' (500 दोहे)। इनकी भाषा पर ब्रज, राजस्थानी, और गुजराती प्रभाव है। इनका काव्य उच्चकोटि का है।

समयसुन्दर (सं0 1641-1700)

जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय खरतरगच्छ के सकल चन्द्रमणि के शिष्य समयसुन्दर ने अपने जीवन का अन्तिम समय अहमदाबाद में व्यतीत किया। इनकी लघु कृतियों का संग्रह कर 'समय सुन्दर-कृत-कुसुमांजलि' में प्रकाशित किया गया है। इन्होंने 'स्थूलिभद्ररास', 'वस्तुपाल तेजपाल रास', 'सीताराम चौपाई', 'चार प्रत्येक बुद्धरास', 'मृगावती चरित्र' - रास-साहित्य की रचना की।

इन्होंने विभिन्न रागों में बद्ध ज्ञान, भक्ति, धर्म, सदाचार की भावना तथा शृंगार विषयक काव्यों का सर्जन किया है।

विभिन्न स्थानों के विहार के कारण इनकी भाषा में राजस्थानी, गुजराती, अरबी-फारसी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न छंदों तथा रसों का परिपाक इनके साहित्य में मिलता है। 'सीताराम चौपाई' से उद्धृत इनकी भाषा की सहजता का एक उदाहरण देखिए-

''सयने रम्भी विलासगृह कामकाज, दासी माता अविहउ नेह।
मंत्रिवी बुद्धि निधान धरित्री क्षमा निधान, सकल कला गुण नेह।।''[73]

कुमुदचन्द्र (सं0 1645-1687)

बारडोली के कुमुदचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने व्याकरण, छंद, नाटक, न्याय आगम एवं अलंकार शास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। इनकी अब तक प्राप्त 28 हिन्दी रचनाओं में 'नेमिनाथ बारहमासा', 'नेमिजिनगीत', 'नेमीश्वरगीत', 'हिन्दोलनागीत', 'वणजारागीत', 'दशधर्मगीत', 'सपृव्यसन गीत', 'पार्श्वनाथगीत', 'चिंतामणि पार्श्वनाथगीत', प्रचुर स्फुट पद तथा विनतियाँ उल्लेखनीय हैं। 'भरतबाहुलिछंद' और 'आदिनाथ (ऋषभ) विवाहलो' इनकी अन्य महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन्होंने सीधी, सरल भाषा में शृंगार, विरह, भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत रचनाएँ की हैं।

इनकी सजीव रसानुकूल भाषा का उदाहरण देखिए-

''चाल्या भल्ल आखडे बलीया, सुर नर किन्नर जोवा मलीया।
काछ्या काछ कशी कड तांणी, बोले बांगड बोली वाणी।।''[74]

कुमुदचन्द्र के शिष्य ***अभयचन्द्र*** (सं0 1640-1721) द्वारा रचित 'वासु पूज्य जी धमाल', 'चन्दागीत', 'सूखडी' हिन्दी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

कुमुदचन्द्र के शिष्य संयमसागर, ब्रह्मगणेश के हिन्दी में रचित गुरु की प्रशंसा में गीत और स्तवन मिलते हैं।

जिनराजसूरि (सं0 1647-99)

ये खरतरगच्छीय आचार्य तथा अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरि के शिष्य जिनसिंह सूरि के शिष्य थे। ये बहुत बड़े विद्वान, कवि तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे।

इनके द्वारा हिन्दी में लिखी ***'गुणस्थान विचारगाभिर्ति पार्श्वनाथ स्तवन', 'गुणध-र्म रास', 'चन्दराजा चौपाई', 'कयवन्ना रास', 'जैन रामायण', 'नैवध महाकाव्य', 'शालिभद्र रास', 'गजसुकुमार रास' और 'जिनसूरि कृत चौबीसी'*** काव्य-रचनाओं के साथ उपदेश परक पदों, गीतों, छत्तीसीयों और बीसी की रचना हुई है।

श्री अगर चन्द नाहटा के सम्पादकत्व में इनकी प्राय: सभी महत्वपूर्ण कृतियों का

संकलन ***'जिनराज-कृत-कुसुमांजलि'*** नाम से प्रकाशित हुआ है।

इन्होंने धर्म, कर्म की महत्ता बताते हुए आध्यात्मिक उपदेश परक पदों में संसार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है।

'जिनराज-कृति-कुसुमांजलि' से जिनराजसूरि की रचना-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''सील रतन जतने करिराखउ, वरजउ विषय विकार जी।
सीलवन्त अविचल पद पामइ, विषई रूलइ संसार जी।।''(75)

आनन्दघन

आनन्दघन (1606-1674 ई0 सन्) जैन मर्मी कवि हैं। 'आनन्दघन-चौबीसी' और 'आनन्दघन-बहोतरी' इनकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ है। इन्होंने ब्रज और मारवाड़ी में अत्यन्त भाव-पूर्ण एवं संगीतात्मक पदों की रचना की है। इनकी रचनाओं में सम्प्रदायनिरपेक्ष ब्रह्मानुभूति का बोध होता है। इन्होंने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की भावमयी अनुभूति की है। आत्मा के परमात्मा से मिलन के लिए कठिन तप एवं त्याग पर बल देते हुए आनन्दघन ने कहा है-

"मनसा-प्याला प्रेम-मसाला, ब्रह्म-अग्नि परजाली;
तन-भाठी अवटाइ पियै करू, जागै अनुभव-लाली।
अगम पियाला पियो मतवाला, चीन्हि अध्यातम-बासा;
आनन्दघन चेतन ह्वै खेलै, देखै लोक तमासा।''(76)

इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य की त्रिवेणी का संगम दृष्टिगोचर हुआ है। इनकी भाषा ब्रज-भाषा, गुजराती, मारवाड़ी पंजाबी आदि भाषाओं के प्रभाव के कारण सधुक्कड़ी हो गई है।

उनका छन्द-विधान विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध है।

विनय विजय

विनय-विजय 17वीं शताब्दी के जैन कवि थे। संस्कृत भाषा और जैन-आगमों के ये पंडित थे। हिन्दी में इनकी बनाई हुई अनेक स्तुतियाँ प्रचलित हैं। ये हीरविजयसूरि की परम्परा में कीर्तिविजय जी के शिष्य थे। ***'श्रीपाल रास'*** इनका अंतिम तथा प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। इनके हिन्दी पदों का संग्रह ***'विनय-विलास'*** नाम से प्रकाशित है। यह कृति भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से उत्तम कृति है।

यशोविजय

पाटण-निवासी जैन कवि यशोविजय 17वीं शती में वर्तमान थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा

आगरा और काशी में हुई थी। विद्वता, प्रतिभा और तल-स्पर्शी अध्ययन को देखकर अगर इन्हें जैन समाज का दूसरा हेमचन्द्रचार्य कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

इन्होंने प्रभावी, सुन्दर, सरल और परिमार्जित ब्रज भाषा में भजन, पद, रास आदि लिखे हैं। एक उदाहरण देखिए-

''देखो भाई अजब रूप जिनजी को।
उनके आगे और सबनको, रूप लगे मोहि फीको॥
लोचन करुना अमृत कचौले, मुख सोहे अतिनीकी।
कवि जस विजय कहे यों साहिब, नेमजी त्रिभवन टीको॥''[77]

इनकी 300 रचनाओं में से 5-6 रचनाएँ तथा कुछ स्फुट पद हिन्दी में मिलते है। इनकी हिन्दी रचनाओं - आनन्दघन की स्तुति में लिखी गई ***'आनन्दघन अष्टपदी' 'दिक्पट चौरासी बोल' 'समाधिशतक' 'समता शतक'*** तथा भक्ति, वैराग्य और विश्वप्रेम के 100 पदों, स्तवन, गीत एवं स्तुतियों का संकलन ***'जसविलास'*** में किया गया है। इनकी भाषा प्रसादगुण युक्त, शैली सरस तथा छंद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध है।

धर्म वर्धन (1643-1727 ई0)

इनके जन्म-स्थान का कोई परिचय नहीं मिलता। इनकी छोटी-बड़ी 265 रचनाएँ 'धर्मवर्धन ग्रन्थावली' में प्रकाशित हो चुकी हैं। डॉ0 शुक्ल के अनुसार कवि द्वारा प्रणीत 'धर्मबावनी', 'कुंडलिया बावनी', 'छप्पय बावनी' आदि बावनियाँ नीति, उपदेश एवं सरल संतोचित असाम्प्रदायिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष महत्त्व की है।[78] 'धर्म बावनी' से एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''चाहत अनेक चित्त, पाले नहीं पूरी प्रीत;
केते ही करै है मीत, सोदौ जैसे हाट को।
छोरि जगदीस देव, सारें ओर ही की सेबु;
एक ठोर ना रहै, ज्युं मोगल-कपाट को।।''[79]

लक्ष्मी वल्लभ

ये खरतरगच्छीय शाखा के लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। इनके जन्म, दीक्षा समय, स्वर्गवास आदि की जानकारी उपलब्ध नहीं है परन्तु इनका रचनाकाल सं0 1714 से 1747 वि0 तक है। उन्हें हिन्दी, संस्कृत, राजस्थानी और गुजराती भाषाओं का ज्ञान था। वे उच्चकोटि के कवि एवं विद्वान थे। इनकी हिन्दी रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1) 'चौबीसी', 2) 'महावीर गौतम छंद'(संवत 1741 से पूर्व), 3) 'दोहा बावनी', 4)

'काव्य ज्ञान' (या काल ज्ञान) (सं0 1741), 5) 'सवैया बावनी' (सं0 1738), 6) 'भावना विलास'(सं0 1727), 7) 'नेमिराजुल बारहमासा', 8) 'नवरत्न चौपाई' (सं0 1747), 9) 'उपदेश बत्तीसी', 10) 'चेतन बत्तीसी', 11) 'देशान्तरी छन्द', 12) 'अध्यात्म फाग', (सं0 1725), 13) 'राजबावनी' (सं0 1725), 14) 'जिनवन स्तवन', तथा 15) कुछ फुटकर पद।

भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। 'उपदेश बत्तीसी' से इनकी रचना-शैली का एक उदाहरण देखिए-

''आतम राम सयाणे तूं झूठे भरम भुलाना
किसके भाई किसके भाई, किसके लोक लुगाई जी,
तून किसी का को नहीं तेरा, आपो आप सहाई।।1।।''(80)

वादिचन्द्र

वादिचन्द्र दिगम्बर मूल संघ के विद्यानंदि की शिष्य परम्परा में प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इनकी प्राप्त रचनाऐं ***'श्रीपाल आख्यान'*** (सं0 1657), ***'भरतबाहुबलि छंद', 'आराधना गीत', 'अम्बिका कथा'*** (सं01651) तथा ***'पाण्डव-पुराण'*** (सं0 1654 वि0) हैं।

वादिचन्द्र के शिष्य भ0 ***महीचन्द्र*** (सं0 1651 के पश्चात्) की तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं- 'आदित्य व्रत कथा', 'लवांकुश छप्पय' और 'नेमिनाथ समवशरण विधि'।

जिनहर्ष (सं0 1713-1738)

जिनहर्ष खरतरगच्छ आचार्य जिनचन्द्रसूरि की परम्परा में आचार्य शांतिहर्ष के शिष्य थे। कवि जिनहर्ष के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। इनकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका गुजरात से अत्याधिक सम्बन्ध था।

इनकी हिन्दी रचनाओं की एक लम्बी सूची अगरचन्द नाहटा द्वारा संपादित *'जिनहर्ष ग्रंथावली'* में दी गई है। इनकी हिन्दी रचनाओं में *'चन्दन मलयगिरि चौपाई' (सं0 1704), 'नन्द बहोत्तरी-विरोचन मेहता वार्ता' (सं0 1714), 'उपदेश छत्तीसी' (सं0 1713), 'जसराज बावनी' (सं0 1738), 'चौबीसी', 'दोहा मातृका बावनी' (सं0 1730)* के साथ दो बारहमासा *'नेमिबारहमासा', 'नेमि-राजमती बारहमास सवैया'* उल्लेखनीय है। इनकी ***'सिद्धचक्र स्वतन', 'पार्श्वनाथ नीसाणी', 'ऋषिदता चौपाई'*** तथा ***'मंगल गीत'*** अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

इनकी भाषा परिमार्जित, प्रसादगुण सम्पन्न, सुललित मधुर और रसात्मक है। इनकी रचना-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''जो हम ऐसे जानते, प्रीति बीचि दुख हाइ।
सही ढंढ़ेरो फेरते, प्रीत करो मत काइ।।''[81]

ईसा की 17वीं शताब्दी में ***अभय कुशल*** (सं0 1730 के आसपास) कीर्तिरत्न सूरि शाखा के पुण्यहर्ष के शिष्य थे। इनकी एक हिन्दी-रचना ***'विवाह पटल भाषा'*** प्राप्त है।

इस शताब्दी के अन्य जैन कवियों और उनकी कृतियों में ***लाल चन्द*** कृत ***'वैराग्य बावनी'*** (सं0 1695); ***महानन्द गणि*** कृत ***'अंजना सुन्दरी रास'*** (सं0 1661); ***गुणसागर सूरि*** कृत ***'कृतपुण्य (कयवन्ना) रास', 'स्थूलिभद्रगीत', 'शान्तिजिन विनती रूप स्तवन', 'शांतिनाथ छन्द', 'पार्श्वजिन स्तवन'; कनककीर्ति*** कृत ***'भरतचक्री सजझाय' (भक्ति काव्य), 'मेघकुमार गीत', 'जिनराज स्तुति', 'विनती', 'श्रीपाल स्तुति'; आनन्दवर्धन (खरतरगच्छीय महिमासागर के शिष्य)*** कृत ***'चौबीसी' (सं01712), 'भक्तामर सवैया'; देवी विजय (विजय सिंह सूरि के प्रशिष्य)*** कृत ***'विजयदेवसूरिनिर्वाण' (सं0 1713, खंभात में); केशवदास (खरतरगच्छ की जिनभद्र शाखा के लावण्य रत्न के शिष्य)*** की ***'शीतकार के सवैया'*** तथा ***'केशवदास बावनी' (सं01736)*** है।

युग प्रधान अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्र सूरि की शिष्य परम्परा में हुए ***विनयचन्द्र*** कृत ***'उत्तम कुमार चौपाई'*** (1752 सं0, पाटण में) उल्लेखनीय हैं।

17वीं शताब्दी में जैनों ने भी अनेक वार्ताओं की रचना की जिनका आधार - सगालशाह, पंचदंड, सदयवत्स-सावलिंगा, विद्याविलास, वछराज, सिंहासन बत्तीसी, विक्रमादित्य, भोज प्रबन्ध, शीलवती आदि हैं। जैन साधुओं द्वारा रचित अधिकांश वार्ताएँ अप्रकाशित हैं। नेमिविजय के 'शीलवती रास' में नायक चन्द्रगुप्त तथा नायिका शीलवती के जीवन की अनेक विपत्तियों एवं चमत्कारों का वर्णन है। इनमें भाषा का पुराना रूप ही दिखाई देता है।

समय सुन्दर द्वारा रचित 'नल दमयन्ती रास' इस काल की श्रेष्ठ रास-रचना है। अनेक अन्य जैन कवियों ने भी प्रबन्ध एवं रास-काव्य लिखे है। मुनि आनन्दघन जी द्वारा रचित 'आनन्दघन चोवीशी' तथा 'आनन्दघन बहोतरी' इनकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ है जिनमें ज्ञान-भक्ति के पद हैं। इनका दूसरा नाम लाभानन्द अथवा लाभ विजय था। वे आत्मानुभवी, महान योगी, ज्ञानी तथा भक्त थे। उनके काव्य में गंभीर दर्शन, भक्ति, त्याग-भावना मिलती है। इन्होंने ब्रज और मारवाड़ी में अत्यन्त भावपूर्ण एवं संगीतात्मक पदों की रचना की।

अहमदाबाद निवासी जैन लोकांगच्छ के कवि ***किशनदास*** (सन् 1711 ई0 रचनाकाल) ने ब्रजभाषा में ***'किशन बावनी'*** की रचना की है। भाषा और भाव की दृष्टि

से यह रचना समृद्ध है। शांत रस की इस रचना का मुख्य विषय ज्ञानोपदेश है।

इनकी 'उपदेश बावनी' (किशन बावनी) का संपादन गोविन्द गिल्लाभाई (सं0 1915) द्वारा हुआ है।

श्रीमद् देवचन्द्र (सं0 1746 में जन्म-सं0 1812 मृत्यु)

श्री मद्देवचन्द्र युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि की परम्परा के पं0 दीपचन्द के शिष्य थे। इनकी हिन्दी रचनाओं में 'द्रव्य प्रकाश' (सं0 1737 वि0 बीकानेर में), 'साधु समस्या द्वादस बोधक', 'आत्महित शिक्षा' तथा पद आदि हैं। इनके पद श्री अगरचन्द नाहट द्वारा संपादित 'पंच भावनादि सजझाय सार्थ' तथा 'श्रीमद् देवचन्द' (भाग-2) में संग्रहीत हैं।

कनक कुशल भट्टारक (सं0 1794 के आसपास)

कनक कुशल गुरु प्रताप कुशल के शिष्य थे जो प्रतापी, चमत्कारी तथा यशस्वी कवि थे। शाही दरबार में इनका बहुत सम्मान होता था। महाराव लखपति सिंह द्वारा ब्रजभाषा पाठशाला की स्थापना कर उन्हें भट्टारक की पदवी से विभूषित करके उन्हें पाठशाला का संचालक नियुक्त किया। राजस्थान के किशनगढ़ से कच्छ आकर इन्होंने पाठशाला का संचालन किया। कनक कुशल अपने समय के सम्मानित तथा संस्कृत और ब्रजभाषा के कुशल साहित्यकार तथा प्रकांड विद्वान थे। कनक कुशल एवं उनके शिष्य कुंअर कुशल कच्छ के महाराव लखपतसिंह जी के कृपापात्र तथा सम्मान प्राप्त आचार्य थे। कनक कुशल तथा उनके शिष्य कुंअर कुशल ने अनेक ग्रंथों की रचना की जिसमें ***'लखपत मंजरी नाममाला'*** तथा ***'लखपतिजससिंधु'*** विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें कनक कुशल ने अपने आश्रयदाता तथा कच्छ के महाराव लखपतसिंह की प्रशंसा की है। इनकी भाषा-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

> ***''विकट वेर वेताल कनक संघाट जब कुरत।***
> ***अरि गढ गंजन अतुल सदल शृंद्वला बल तोरत।***
> ***ऐसे प्रचण्ड सिंधुर अकल, महाराज जिन मान अति।***
> ***पठए दिल्लीस लखपति को, कहे जगत धनि कच्छपति।।''***[82]

कुंअर कुशल भट्टारक

कुंअर कुशल गुजरात के कच्छ प्रदेश में ब्रजभाषा-साहित्य की परम्परा का सूत्रपात करने वाले हेमविमल सूरि की संतान थे। ये भट्टारक कनक कुशल के शिष्य थे। ये असाधारण व्यक्तित्त्व, कवित्त्व और संगीत-प्रतिभा के धनी थे। इनको ब्रजभाषा के साथ-साथ संस्कृत और फारसी का भी ज्ञान था। इनके द्वारा संवत् 1794 से सं0 1821 तक के समय में लिखी रचनाएँ प्राप्त हैं। इन्होंने अपने गुरु से भी अधिक ग्रंथों की रचना की है।

इनके उपलब्ध ग्रंथ इस प्रकार है- ***'लखपति मंजरी नाममाला', 'पारसति (पारसात) नाममाल', 'लखपत पिंगल'*** अथवा ***'कवि रहस्य', 'गौड पिंगल', 'लखपति जससिंधु', 'लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय' (मरसिया), 'महाराव लखपति दुवावैत', 'मातानो छन्द'*** अथवा ***'ईश्वरी छन्द', 'रागमाला'*** आदि। इनमें 'लखपति पिंगल' और 'लखपति जससिंधु' महत्वपूर्ण रचनाएँ है। इनमें रीतिकालीन आचार्य परम्परा का चरमोत्कर्ष है। इनका आचार्यत्व बड़ा व्यापक और प्रौढ़ दिखता है। आचार्य कुंअर कुशल का 'लखपति जससिंधु' नामक ग्रंथ हिन्दी की रीति ग्रंथों की परम्परा में कई अभावों को दूर करता है। यह ग्रंथ 'काव्य प्रकाश' को आदर्श मानकर निर्मित हुआ है।[83] इनकी रचना-शैली में महाराव के शौर्य और ऐश्वर्य का इस प्रकार वर्णन हुआ है-

''कछपति देशल राउ कै, तषत तेज बलबीर।
महराव लखपति मरद, कुंअर कोटि कोटीर।।2।।
बड़े कोट किल्ला बड़े, बड़ी तोप विकराल।
बड़ी रौस चिहु और बल, जबर बडी जंजाल।।'[84]

पं0 भानुविजय के शिष्य लावण्यविजगणि कृत 'चौबीसी' (सं0 1761 में खंभात में) तथा जिनउदय सूरि कृत '24 जिन सवैया' (सं0 1762) हिन्दी में लिखी हुई हैं।

ज्ञानविमलसूरि (सं0 1694 (सं0 1782)

इनका जन्म ओसवाल वंश में भिन्नमाल में हुआ। इन्होंने सूरत, खंभात, राजनगर, पाटण, पालीताणा, जूनागढ़ आदि क्षेत्रों में विहार किया। इनकी प्राप्त हिन्दी-रचनाएँ - गीत, पद, स्तवन आदि मुक्तक हैं। श्री ज्ञानविमल सूरिश्वर रचित काव्य 'प्राचीन स्वतन रत्न संग्रह' भाग-1 और भाग-2 में संग्रहीत हैं।

इस शती के अन्य कवियों में उत्तम सागर के शिष्य ***न्याय सागर*** (सं0 1797 में अहमदाबाद में मृत्यु) कृत दो 'चौबीसी'; विजयराजसूरि की परम्परा में शिवरत्न के शिष्य ***उदयरत्न*** (रचनाकाल सं0 1749-1799 तक) के 20 छोटे बड़े ग्रंथ; तपागच्छ की चन्द्र शाखा के ***खेमचन्द्र*** कृत 'गुणमाला चौपाई' (सं0 1761); सूरत के भ0 अभयचन्द्र की परम्परा के भट्टारक ***रत्नचन्द्र*** कृत 'चौबीसी' (सं0 1776) 'बावन-गजागीत', स्फुट गीत और पद; गुजरात के लोकागच्छीय रामसिंह के शिष्य कुशल कृत 'सीता आलोयणा'; सिद्धिवर्धन के शिष्य ***गुणविलास*** कृत 'चौबीसी' (सं01797); ***निहालचन्द्र*** कृत 'ब्रह्मबावनी' और गुजरात के कल्याणसागर सूरि के शिष्य ***हेम*** कृत 'मदन युद्ध' (सं0 1776) आदि की रचनाएँ हिन्दी में मिलती है।

सत्रहवीं शताब्दी से पहले अपभ्रंश में जैन कवियों द्वारा विपुल रचनाएँ लिखी जा रही थी परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् जैन कवियों ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली में भी असाम्प्रदायिक एवं बोध-प्रद पदों की रचना की है। इन कवियों की कविता में भी उसी मस्ती और प्रेम, उसी संयम, शील और सदाचार का उपदेश है जो ज्ञानमार्गी निर्गुण संतों ने दिया। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में जैन साधुओं ने उसी परम्परागत साहित्य की रचना बड़े पैमाने पर जारी रखी; जैसे रास, धर्मकथाएँ, बालावबोध, स्तवन, सज्झाय आदि। इस युग में उदयरत्न, नेमिविजय, देवचन्द्र, भाव प्रभसूरि, जिन विजय, गंगविजय, हंसरत्न, ज्ञानसागर, भानुविजय, अनोपविजय और विजय के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन साहित्य धारा सतत् मध्यकाल के अंत तक बही है। किन्तु वर्तमान साहित्य के उदय होने के बाद जैन और अजैन-साहित्य दोनों साहित्य-धाराएँ पीछे छूट जाती हैं। तथापि आधुनिक काल में भी साधु, मुनियों द्वारा आधुनिक हिन्दी भाषा में काव्य-रचनाएँ लिखी जा रही हैं।

रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

रामानन्द, वैष्णव धर्म को सबसे अधिक एवं व्यवस्थित विकसित तथा प्रसारित करने वाले श्री रामानुज के शिष्य थे। रामानन्द ने विष्णु के राम के लोक कल्याणकारी तथा लोक-रक्षक रूप को अपना आलम्बन बनाकर एक अलग सम्प्रदाय स्थापित किया तथा रामभक्ति का प्रसार किया।

रामानन्द ने दक्षिण भारत से उत्तर भारत में भक्ति का प्रसार किया। स्वामी रामानन्द (सं01356-1526) वस्तुतः युग प्रवर्तक आचार्य थे जिन्होंने अपनी विचारधारा से समस्त मध्यकालीन भक्तिधारा को प्रभावित किया था।[85] स्वामी रामानन्द ने गुजरात में द्वारका, सिद्धपुर, गिरनार आदि स्थानों पर अनेक यात्राएँ की थी। उनके शिष्यों कबीर, पीपा आदि ने गुजरात के कोने-कोने में राम-भक्ति का प्रचार किया। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्तरी संत-काव्यधारा को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले रामानन्द का प्रभाव तथा भक्ति-पद्धति का प्रचार गुजरात में 16वीं शताब्दी में भी हुआ। कहा जाता है कि रामानन्द ने गुजरात के जूनागढ़ की गिरनार पहाड़ियों पर कई वर्षों तक रहकर योग-साधना की थी।

रामानन्द तथा उनके बारह शिष्यों ने राम-नाम की उपासना करते हुए वर्ण-भेद का खण्डन किया। इन्होंने स्वयं वैष्णव आचार्य होते हुए भी कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि शूद्र भक्तों को अपना शिष्य बनाया तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव का निराकरण किया। सौराष्ट्र में इस पंथ का अधिक प्रचार होने से प्रत्येक गाँव में रामानन्दी मन्दिर मिलते है। समाज की

निम्न जातियों - पाटीदार, लुहार, बढ़ई आदि में इस पंथ का अधिक प्रचार हुआ है।

स्वामी रामानन्द का गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य पर भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भालण की रचनाओं में तथा छोटम, प्रीतम, भोजो भगत, कुबेरदास आदि ज्ञानमार्गी-काव्यधारा के संतों की रचनाओं में इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

रामानन्द (मृत्यु 1457 ई0)[86] ने वैष्णव धर्म के प्रसार में क्रांतदर्शी भूमिका निभाई तथा पारंपरिक जाति-पाँति और ऊँच-नीच की व्यवस्था से पूर्णत: अलग होकर मानवतावादी भूमि पर अपने मतों, सिद्धान्तों और उपदेशों का प्रसार किया। जनभाषाओं के माध्यम से उन्होंने अपने अनेकानेक अनुयायी बना लिए। कालांतर में रामानन्द सम्प्रदाय का विकास हुआ जिसमें पीपा, कबीर, रैदास, मलूकदास, दादू आदि प्रमुख अनुयायी हुए।

इनके अनुयायिओं और शिष्यों में उच्च जातियों के अतिरिक्त निम्न जातियों के संत भी थे। ''भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द, सुरसुरानन्द, परमानन्द, महानन्द और श्रीमाननन्द ब्राह्मण थे तो कबीर, रैदास, धन्नाजाट, सेना नाई, सदाना कसाई, पीपा आदि निम्न और दलित जाति के।''[87]

रामानन्दी सम्प्रदाय के प्रदान के विस्तृत अध्ययन में डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के ग्रंथ 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय'; आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के ग्रंथ; डॉ0 बदरीनारायण श्रीवास्तव के ग्रंथ 'रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव'; डॉ0 रमण प्रजापति का शोध-प्रबन्ध 'गुजरात में रामानन्द सम्प्रदाय के कवि और उनका कृतित्व' आदि उल्लेखनीय हैं।

रविभाण सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य

कबीर के बाद सौराष्ट्र में दो पंथ हुए- एक रामकबीरिया और दूसरा संत कबीरिया। जो कबीर को राम का अवतार मानते थे, वे राम कबीरिया कहलाए थे; पीला अँगरखा और सिर पर टोपी पहनते थे। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में कबीर पंथ के संत विशेषत: समाज की निम्न श्रेणी के लोगों को उपदेश दिया करते थे। कबीर के शिष्य पद्मनाथ जो पाटण-निवासी थे, की छठी शिष्य परम्परा में भाण साहब का नाम आता है जिनका सम्बन्ध शेरखी (वाराही के) से जोड़ा जाता है।

भाण साहब राम कबीरिया पंथ के मूल प्रवर्तक थे जिसे इनके प्रखर प्रतिभावान शिष्य रवि साहब ने आगे बढ़ाया था। इन दोनों के सम्मिलित नामों से 'रविभाण सम्प्रदाय' चल पड़ा। शेरखी के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय की गद्दियाँ जामनगर के खंभालिया और कच्छ के रापर में मिलती हैं। भाण साहब के बाद इनके पुत्र और शिष्य ही विविध स्थानों की

गद्दियों पर विराजमान हुए और आज भी सौराष्ट्र एवं कच्छ में यह परम्परा जीवित है। इसी परम्परा में मोरार साहब, खीम साहब, जीवणदास और होथी जैसे सन्त आते हैं।

इन कवियों की रचनाओं में कुछ विशेष पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जैसे- सून, नूरती-सूरती, अलख, गगनमंडल आदि। योग की भाषा, कुण्डलिनी, षट्चक्र भेद, अनाहत-नाद आदि शब्दों का अधिकता से प्रयोग हुआ है। इन कवियों के बनाए भजन बहुत प्रसिद्ध हुए और आज तक गाये जाते हैं। इन्होंने स्त्री-पुरुषों का मार्गदर्शन किया। इनकी रचनाओं में गुरु का अत्याधिक महत्त्व है और सद्गुरु पर विशेष जोर दिया है।

भाण साहब

रविभाण सम्प्रदाय के प्रवर्तक वाराही के भाण साहब का जन्म 'कनखीलोड़ (चरोतर प्रदेश) में लोहाणा जाति में हुआ। भाणसाहब द्वारा रचित दो ग्रंथों 1) ***'हस्तामलक'***, 2) ***'रावण मंदोदरी संवाद'*** तथा कुछ पदों का उल्लेख मिलता है।[88] सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय द्वारा प्रकाशित ***'रवि-भाण तथा मोरारनीवाणी'*** में भाण साहब के कुछ हिन्दी पद संग्रहित हैं।

भाण साहब का समय 1700 से 1800 ई0 के मध्य माना जाता है। कबीर के 200 वर्ष बाद भाणदास हुए। इनके ऊपर कबीर का गहरा प्रभाव पड़ा था। इन्हें 'सौराष्ट्र का कबीर' भी कहा जाता है। यह प्रभाव इनके पुत्र रापर के गादीपति खीम साहब और उनके प्रमुख शिष्य रविसाहब की रचनाओं और इनकी शिष्य-परम्परा की रचनाओं में भी देखा जा सकता है। भाण साहब की 40 शिष्यों की मण्डली 'भाण फौज' नाम से प्रसिद्ध थी।

ये शिष्य देहाती भाषा में - विशेषकर गाँवों में - लोगों को वैराग्य, गुरु-महिमा, रहस्यवाद, प्रेमलक्षणाभक्ति आदि का उपदेश दिया करते थे। भाण साहब का जन्म यद्यपि गुजरात में हुआ था तथापि उनके उपदेश का क्षेत्र सौराष्ट्र था। सन् 1755 में इन्होंने जीवित समाधि ले ली। रवजी नाम का एक व्यापारी बहुत अधिक ब्याज लेता व छल-कपट के काम करता था। भाण साहब ने उसे बदल दिया और अपना शिष्य बना लिया। इन रवजी की इतनी उन्नति हुई कि ये बहुत प्रसिद्ध हो भाण साहब के योग्य शिष्य सिद्ध हुए। बाद में ये रविसाहब कहलाए।

खीम साहब (सं0 1790-1857 वि0)

खीमदास रविभाण सम्प्रदाय के संस्थापक भाण साहब के पुत्र दादूपंथी संत खेमदास से भिन्न हैं। भाण साहब के पुत्रों द्वारा स्थापित बिंदु शाखा के प्रथम संत खीम साहब थे। इनकी रचनाओं में 'खीम-रवि-प्रश्नोत्तरी', 'चिंतामणि' तथा फुटकल पद हैं। सरल और

प्रभावी भाषा पर कच्छी और सोरठी प्रभाव झलकता है।

त्रीकम साहब (सं0 1858 वि0 में समाधिस्थ)

त्रीकम साहब एक अछूत थे तथा खीम साहब के शिष्य थे। ***'रविभाण-सम्प्रदायनी वाणी' (भाग-2)*** और ***'भांण-चरित्र-प्रकाश'*** में इनके फुटकल पद मिलते हैं। भाषा सरल, मार्मिक, सारगर्भित है। अरबी-फारसी और गुजराती के शब्दों का प्रयोग भी इनके पदों में मिलता है। इनके शिष्य भीम साहब थे।

जीवणदास (निर्वाण काल सं0 1887 वि0)

'रविभाण सम्प्रदाय' के जीवणदास संत भीमसाहब के शिष्य थे। इनका निर्वाण सं0 1887 वि0 का माना जाता है। इनके पदों में नाम, गुरु, संत एवं सत्संग आदि का माहात्म्य मिलता है। भाषा संत-टकसाल की हिन्दी है।

रवि साहब

रवि साहब (1726-1863 ई0) का जन्म तणछा गाँव के वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता मंछाराम और माता इच्छा बाई थी। इन्होंने संत भाणदास से दीक्षा प्राप्त कर गद्दी स्थापित की। रवि साहब के शिष्यों में मोरार साहब, गंग साहब, लाल साहब, राम स्वामी, केशव स्वामी, मौनीराम, जोरीराम, रूपाल तथा हुलनदास आदि प्रमुख हैं।[89] रवि साहब की वाणी हृदय वेधक, वजनदार और मर्मस्पर्शी है। इन्होंने कबीर की-सी संवेदना से सिक्त होकर अनेक पद लिखे हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''आठों पहोर, अद्धर रे आसन, कबहु न उतरे आनी
ज्ञानी, ध्यानी, विज्ञानी थक गए, ऐसी अकथ कहानी।''[90]

रवि साहब ने हिन्दी एवं गुजराती भाषाओं में विपुल साहित्य की रचना की है। इनके हिन्दी ग्रंथों में ***'बोध चिन्तामणि', 'राम गुंजार चिंतामणि', 'आत्मलक्ष चिंतामणि', 'रविभाण प्रश्नोत्तरी' (सूर की भ्रमरगीत शैली पर), रविगीत*** हैं। फुटकर काव्य में गुजराती ग्रंथों के बीच प्राप्त साखियाँ, स्फुट पद, उलटबासियाँ इत्यादि हैं। रवि साहब ने लगभग ढाई हजार साखियों की रचना की है जो विभिन्न 69 अंगों में विषयानुरूप विभाजित है।[91] साखियों में आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिकता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनके ग्रंथों के मुख्य विषय योग साधना, ब्रह्मसाधना, संत समागम आदि हैं। इन्होंने वैराग्य बोध, मस्ती, फक्कड़पन, प्रेममय भक्ति, गुरु महिमा एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों को ही अपनी वाणी का प्रमुख आधार माना है। रवि साहब कृत 'बोधचिन्तामणि' की हस्त प्रति द्वारा उद्धृत एक उदाहरण देखिए-

''सतगुरु के परताप से, खोजा पिंड ब्रह्मांड।
परमसुन में परमतंत है, दरसा गहे निसाण।।''[92]

डॉ0 रामकुमार गुप्त ने रवि साहब द्वारा रचित 'गुरुमहात्म्य'(लघु रचना) तथा 'विमलसन्त-वाणी' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है।[93]

मोरार साहब

मारवाड़ के थराद नामक रजवाड़े के राज पुत्र थे। वाघेला राणावंश में इनका जन्म सं0 1814 में हुआ था।[94] बाद में ये रविभाण सम्प्रदाय के रवि साहब के शिष्य हुए। इन्होंने सं0 1905 में समाधि ले ली। इनके प्रमुख शिष्यों में होथी, छोटा लाल, चरनदास, जाम रणमल सिंह थे।

इनके द्वारा हिन्दी, गुजराती भाषाओं में लिखी रचनाओं में ***'सदगुरु-विरह', 'गुरुमहिमा', 'चिंतामणि', 'बारहमासी', 'धोळ'*** तथा अन्य फुटकल पद है। इनकी भाषा पर सोरठी-गुजराती, अरबी फारसी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, विरह, रहस्यात्मकता, ब्रह्मभिमुखता आदि भावनाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है।

''मेरे प्रीतम चले परदेश
जीवन मैं कैसे जीवुं?
साचुँ कहुं तो में संग चलुँगी,
हाँ रे में दिल किया दरवेश।''[95]

मोरार साहब की वाणी में गुरु के प्रति अपार श्रद्धाभाव है।

लालदास साहब(प्र0 सं0 1779 वि0)

संत रविदास के शिष्य लाल दास सिद्धपुर पाटण के निवासी थे। ये लुहाणा जाति के थे। इनके शिष्यों में धरमदास, नरसिंह दास, रामदास प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में चांदरणा छंद, सांकळी, रेखता तथा फुटकल पदादि हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी है जिसमें अरबी, फारसी और गुजराती के शब्द भी मिलते हे। पदों में संगीतात्मकता है। शैली सरल, मार्मिक और तीक्ष्ण है।

रविभाण सम्प्रदाय के कवियों के प्रदान के समक्ष अन्य विभिन्न कबीरपंथी सम्प्रदायों का प्रदान अत्यन्त अल्प है।

सूफी कवि और हिन्दी साहित्य

गुजरात में मध्यकाल में बोली जाने वाली खड़ीबोली हिन्दी अर्थात् गूजरी भाषा के उद्भव और विकास में सूफी सन्तों का काफी योगदान रहा है। भारत में ईसा की आठवीं सदी तक अनेक अरब और ईरानी व्यापारी यहाँ बस गए थे।

भारत में मुसलमानों की सत्ता की स्थापना से बरसों पहले गुजरात में हर जगह मुसलमान विपुल संख्या में आबाद हो चुके थे। गुजरात में मुस्लिम सूफियों के आने का सिलसिला सिद्धराज जयसिंह के समय से शुरू हुआ था। गुजरात में मुसलमानों के बस जाने के कारण यहाँ की भाषा पर भी उनका प्रभाव पड़ा। गुजराती से भिन्न एक नई भाषा या अरबी-फारसी युक्त एक भाषा शैली का आविर्भाव हुआ, जिसे गुजरी, गूजरी या बोली-गुजरात कहा जाने लगा। आम जनता के अतिरिक्त सुल्तानों के दरबारों में भी गूजरी भाषा का चलन था।(96)

डॉ0 अम्बाशंकर नागर ने गुजरात के अंचल से प्राप्त ***'गुजरी अथवा गूजरी भाषा' को ख़सरो की हिन्दवी और दक्षिण के कवियों की दक्खिनी के बीच की कड़ी माना है।***(97)

गुजरात के सूफी कवियों ने भी अपनी भाषा को गूजरी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, हिन्दवी और दहलवी आदि नाम दिए है। मियाँ मुस्तफा (1576 ई0) ने हिन्दी के प्रति अपने जज़्बातों का इज़हार बड़े प्रेम और सम्मान के साथ किया है-

''हिन्दी पर न मारो ताना,
सभी बतावें हिन्दी माना।''(98)

गूजरी-साहित्य के विकास में सूफियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। गूजरी साहित्य फारसी लिपि में बद्ध होने के कारण बहुत कम विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है। अब हम गुजरात के मध्यकालीन सूफी कवियों की गूजरी रचनाओं पर दृष्टिपात करेंगे।

गुजरात के सूफी कवि

गुजरात में गूजरी की इस सूफी-साहित्य-साधना का प्रारम्भ शेख अहमद खट्टू (1336-1446) और बुरहानुद्दीन कुत्बे आलम बुखारी (1344-1453) से माना जा सकता है। ये उच्च कोटि के संत थे और गुजरात में रस-बस गए थे। ये सामान्य जनता को गूजरी में उपदेश देते थे। इनके अतिरिक्त शाह आलम, शेख बहाउद्दीन बाझन, शाह अली गामधनी, मियाँ खूब मुहम्मद चिश्ती 'खूब', बाबा शाह हुसैनी, ईशा चिश्ती, सैयद पीर मशाइख चिश्ती, शेख मुहम्मद अमीन आदि अनेक सूफ़ी संत एवं कवि गुजरात में हुए हैं। इन्होंने अनेक मसनवियाँ, ऐतिहासिक कृतियाँ एवं स्फुट रचनाएँ गूजरी में की है। वली के बाद गूजरी में रचना करने वाले सूफियों की परम्परा वली के बाद गूजरी में रचना करने वाले सूफ़ियों की परम्परा प्रय: समाप्त हो जाती है और गुजरात में उर्दू काव्य-परम्परा का प्रवर्तन होता है।

डॉ0 अम्बाशंकर नागर एवं स्वर्गीय प्रो0 अल्लाबख्श शेख ने अपने ग्रंथ 'गुजरात

की हिन्दुस्तानी काव्य धारा' में गूजरी भाषा के इक्कीस कवियों का परिचय दिया है, उनमें से कुछ प्रसिद्ध सूफी संत हो चुके है। साहित्यिक दृष्टि से उन कवियों की रचनाएँ, जिन्होंने गुजरात में खड़ी बोली परम्परा को जन्म दिया, अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी खड़ी बोली के विकास के अध्ययन की दृष्टि से बड़ी उपयोगी है।

हज़रत शेख़ अहमद खट्टू

ये सन् 1405 में अहमदाबाद आए थे। इनका मकबरा सरखेज, अहमदाबाद में है। उनके जीवन चरित्र 'मिकातुल वुसूल' में कुछ दोहे मिलते है-

''दु:खा काजल जे करूँ तो सोकन दु:ख दीन्हा
न पियु देखन दीना मुंज न आप देख सकीना
तूं जानता करतार जी मुंज साईं बिसरा
साईं की है सार पिंजरमां जो मन बसे''[99]

शेख बहाउद्दीन बाझन(1388-1506 ई0)

शेख बहाउद्दीन बाझन(1388-1506 ई0) अहमदाबाद के थे। इन के काव्य में तसव्वुफ और भारतीय दर्शन का समन्वय प्राप्त होता है परन्तु छन्द-विधान भारतीय है। इसके साथ ही इन्होंने हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का कार्य भी किया। इनका अभी तक उपलब्ध काव्य-संग्रह ***'खजाना-ए-रहमत'*** है। इनकी रचना-शैली के उदाहरण दृष्टव्य है-

''बाजन जीव अमर अहे मुवा न कहियो कोय,
जो ए कोई मूवा कहे, मूवा ए ही होय।''[100]

शेख बहाउद्दीन बाझन की गणना उर्दू के आदि कवियों में की जाती है।[101] पर उन्होंने स्वयं अपनी भाषा को 'हिन्दी' और गूजरी कहा है। जिस भाषा को 'हिन्दी' कहा उसके कुछ नमूने देखिए-

''यूँ बाजन बाजे रे इसरार छाजे।।
मंडल मन में धमके
रबाब रंग में झनके,
सूफी उन पर ठमके।
यूँ बाजन ब जे रे इसरार छाजे।।''[102]

उनकी जकरियाँ कव्वालों में खूब प्रचलित थी। 'बाझन' ने अपनी गूजरी कविता को विशेष राग-रागिनियों में गाने के लिए लिखा है।

हज़रत कुतुबे आलम

पाटण निवासी प्रसिद्ध सूफी फ़कीर हज़रत कुतुबे आलम अहमदशाह के अहमदाबाद बसाने पर अहमदाबाद चले आए। इनका जन्म सन् 1388 में और मृत्यु सन् 1446 में हुई। 'मिरोत अहमदी' और मिरोत सिकंदरी' में इनकी वाणी संकलित है। एक उदाहरण देखिए-

''कांधी का राजा तुम सर कोई न बूझे।
सकी का राजा तुम सर कोई न बूझे।''(103)

हजरत सैयद मुहम्मद जौनपुरी

हजरत सैयद मुहम्मद जौनपुरी 15वीं शताब्दी के घुमक्कड़ सूफी संत थे। इनके जन्म-स्थान इत्यादि का विशेष परिचय नहीं मिलता। अपने जीवन का अधिकतर हिस्सा इन्होंने घूमने-फिरने में ही व्यतीत किया था। इनका जीवन काल सन् 1443 से 1504 ई0 तक माना जाता है। अपनी यात्रा के दौरान ये कुछ समय तक अहमदाबाद में भी रहे थे। इन्होंने भी गूजरी हिन्दी में काव्य-रचना की है-

''चन्दर कहे तारायन कू, सूरज देखो आय।
ऐसा भगवन्ता जो भेटिया, दुष्ट पाप छुट जाए।''(104)

हजरत कुतुबे आलम के बड़े पुत्र *हज़रत शाह आलम* का देहान्त 1490 ई0 में हुआ। इनका मक़बरा रसूलाबाद, अहमदाबाद में है। *'जुम्आते शाहिया'* में इनकी काव्य-रचना के उदाहरण मिलते है। देखिए-

''मंझला एक मीर है, राजन जी की मीराण में
हूं एक मीरक हूँ, राजा जी की मीराण में
बहुत लार लेबे तुझनां लांघा, खींच आंचलन मा उससुं बांधा
शाह रसूल की हुं बलिहारा, मैं कूला में इसकी बारा''(105)

शाह ***वजीहुद्दीन अलवी*** का जन्म चंपानेर (गुजरात) में सन् 1505 में तथा मृत्यु अहमदाबाद में सन् 1590 में हुई। ***'बहरुल इक़ाइक'*** में इनके उपदेश उपलब्ध हैं।

काजी महमूद दरियायी

सूफी फकीर काजी महमूद दरियायी का जन्म गुजरात के बालाशिनोर के पास वीरपुर गाँव में हुआ था। इनका देहान्त सन् 1521 में 67 वर्ष की आयु में हुआ। इनके पिता काजी हमीद उर्फ शाहचलंदा भी पहुँचे हुए फकीर थे, दरिया के मुसाफिरों के वली होने के कारण शाहचलंदा दरियायी कहे जाते थे। आगे चलकर इनके पुत्र और मुरीद काजी महमूद भी दरियायी कहे जाने लगे। इन्होंने हिन्दी में भी कुछ उपदेश दिए हैं। इन्होंने खास तर्ज़ की

नज़्म जिसे 'जकरी' कहा जाता है, लिखी है।

इनकी रचना-शैली की निम्नलिखित उदाहरण से पुष्टि भी हो जाती है-

''पाँचों वक्त नमाज़ गुजारूँ,
दायम पढ़ूँ कुरान।
खावो हलाल, बोलो मुख साचा,
राखो दुरुस्त ईमान।''(106)

काजी महमूद दरियायी 'दु:ख जीव का मेरा किस कहूं' की संगीत में ***रुचि*** तथा राग-रागिनियों से भली-भाँति परिचित होने से संगीत प्रधान जकरियाँ लिखी। दाऊद नामी कव्वाल इनकी जकरियों को विशेष राग-रागिनियों में गाते थे।

इनका गूजरी काव्य ***'तोहफ़तुलक़ारी'*** में मिलता है। 'तोहफ़तुलक़ारी' के संपादक ने इनकी जिकरियों की भाषा को गूजरी कहा है। इनका यह गूजरी काव्य प्रेमलक्षणा भक्ति में डूबा हुआ है। विरह की वेदना उनके काव्य का प्रमुख लक्षण है। देखिए-

राग मल्हार:

''आयोरी मुझ मिलन के काज,
तुझ पर प्यार मेरा है आज।
तपती थी नित जपती थी।
तुझ कारन भी खपती थी।''(107)

मुहम्मद शाह अली गामधनी

मुहम्मद शाह अली गामधनी सैयद अहमद कबीर रिफाइकी के वंशज थे। इनकी मृत्यु 1566 ई0 में हुई। इनका मज़ार अहमदाबाद के रायख़ड में है। 'मिराते अहमदी' में इनके कलाम की प्रशंसा की गई है। आपका दीवान ***'जवाहिरे इसरारुल्लाह'***(108) के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी कविताओं में सूफ़ियों के प्रेम की पीर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने सदैव अपने आपको आशिक और जुदा के माशूक के रूप में देखा है। वे ईश्वर को सारे संसार में व्याप्त मानते हैं-

''मुझ बिन कोई नहीं जग माँहा। चेरी सुहागन हूँ तिस नांहा।।
आपन खेले आप खिलावे। आपन आपस ले कल लावे।।''(109)

परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रेम साधना का उपदेश दिया है-

''कभी सो मजनूं होइ बिरलावे। कभी लैला होय दिखलावे।।
कभी सो खुसरो शाह कहावे। कभी सो शीरीं होकर आवे।।''(110)

मौलाना अब्दुल हक़ ने इनकी भाषा के सम्बन्ध में कहा है- ***''इनका तर्ज़े क़लाम हिन्दी शौरा का सा है।''***[111] वैसे इन्होंने अपनी भाषा को सदैव 'गूजरी' कहा है।

अहमदाबाद निवासी सूफी कवि ***हजरत खूब मोहम्मद चिश्ती*** साहब का जन्म सन् ई0 1539 ई0 में और देहान्त 1614 ई0 में हुआ। इन्होंने ***'खूब तरंग'*** नामक एक सूफियाना मसनवी (986 हि0 में लिखी), ***'भाव-भेद'*** नामक रिसाला और ***'छन्द-छन्दां'*** लिखा है। इस मसनवी में इन्होंने अपनी भाषा को 'अरबी फारसी आमेज गुजराती'[112] कहा है-

''जीवन दिल अजम अरब की बात।
सुन बोलें बोली गुजरात।
जीवन मेरी बोली मुँह बात।
अरब अजम एक सँघात।''[113]

शाह आलम पीर के अनुयायी ***मल्लिक अमीन कमाल*** (1620 ई0) की लिखी किताब ***'बहराम गोर और हुश्नबानू'*** मसनवी प्रसिद्ध है। ये गुजरात के दरबारी शायर भी थे, कुछ लोग इन्हें दकनी भी मानते हैं।

'बहराम गोर और हुश्नबानू' की कुछ पंक्तियां देखिए-

''सुना शहर फारस का है बादशाह है। खूबी मने खूब ज्यों मेहो माह।।
कते हैं बहुत खूबसूरत है वो। फिरंग चीन की खूब मूरत है वो।।
अगर्चे वही आदमी जाद है। चंदा उसके आगेसो बी मात है।।''[114]

शेख मोहम्मद अमीन के औरंगजेब के शासनकाल (संवत 1690 विक्रम) में वर्तमान थे। आपने ***'यूसुफ जुलेखा'*** नामक इश्किया मसनवी लिखी है जिसमें इन्होंने अपनी भाषा को गूजरी कहा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने एक मसनवी और लिखी है जिसका नाम 'तवल्लुदनामा' है।

सैयद शाह हाशिम भी अहमदाबाद के सूफी संत थे। आपकी मृत्यु सन् 1649 ई0 में अहमदाबाद में हुई। आपकी वाणी हिन्दी में मिलती है-

''ये दुनिया के लोग कीड़े मकोड़े।
गेहूँ शहद पर दौड़ते घोड़े,
डूबते बहुत निकलते थोड़े।''[115]

गोधरा निवासी ***मोहम्मद फताह*** भी शायर अमीन के समकालीन थे। इन्होंने ***'यूसुफ़ सानी'*** या ***'जुलेखा-ए-सानी'*** लिखी है जिसकी मूल प्रति बम्बई के प्रो0 नदवी के संग्रह में सुरक्षित है। भाषा-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''अब सुनो फताह की बातां, सब अयां।
गोधरे के शहर में केतां बयां॥'
बैठे थे एक दिन जुम्मा मसजिद मने।
को बड़े और जगर सब छोटे नन्ने॥
शहर सीं आया था एक मुहम्मद हया।
उन निकाला युसुफ़ जुलेखा तोतिया॥'[116]

खूब मुहम्मद चिश्ती से लेकर मुहम्मद अमीन तक करीब 100 साल तक गूजरी की कोई रचना नहीं मिलती है। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक प्रमुख कारण यह रहा कि गूजरी के कवियों का गोलकुण्डा और बीजापुर के सुलतानों ने बड़े आदर-सम्मान से सत्कार किया। उस समय गुजरात में अकबर के आक्रमण के कारण अराजकता फैली हुई थी। यहाँ के कविगण शांति की खोज में दकन गए थे। कई गूजरी के कवि तो उससे भी पहले दकन गए थे। उनमें शमसुल उश्शाक मीरांजी हैं जिनकी मृत्यु 1496 में हुई थी। डॉ0 अब्दुल हक़ ने 'मिरातुश्शोरा' की भूमिका में गुजरात में रहने वाले कवि बताया है। उनके सुपुत्र बुराहानुद्दीन 'जानम' (मृत्यु 1582) हैं।

गुजरात से प्रस्थान करके गए कवियों में से अहमद गुजराती ने मसनवी यूसुफ जुलेखा (1580-85 में) लिखी। इसकी संपादक डॉ0 सैयदा जाफ़र इसकी भूमिका में लिखती हैं : *''अहमद की यूसुफ जुलेखा (1580-85) को बजही की कुतुब मुश्तरी (1609-10) पर रबासदी (पच्चीस साल) से ज्यादा का तक़द्दुम हासिल है।''*[117]

एक और सूफ़ी कवि मलिक अमीन कमाल (1580-1629 ई0) की मसनवी 'बहराम गोर और हुस्नबानों' का सम्पादन डॉ0 नुरूस्सईद ने किया है। गूजरी को फारसी काव्य परम्परा से अवगत कराने का सर्व प्रथम प्रयत्न शाह अली जीव गामधनी ने किया। खूब मुहम्मद चिश्ती ने गूजरी के लिए फारसी छन्दों को प्रयोग में लाने पर बल दिया।[118] गूजरी की इस नई धारा ने युग प्रवर्तक शायर 'वली' को जन्म दिया।

वली (मृत्यु-सं0 1764 वि0)

वली का पूरा नाम वली मुहम्मद था। कुछ लोग इन्हें औरंगाबादी कहते हैं और कुछ अहमदाबादी। धर्म और काव्य की 'तरस' लेकर ये सूरत, औरंगाबाद और दिल्ली आदि स्थानों का भ्रमण करते रहे तथा जीवन में इन्होंने ख्याति अर्जित की। सं0 1764 वि0 में अहमदाबाद में इनकी मृत्यु हुई।[119]

हिन्दी और उर्दू की परम्परा में वली एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वली और दक्खिनी

और उर्दू के बीच की कड़ी माना जाता है। वली के रेखता, गज़ल, कसीदे, मसनवी, रूबाई, तरजी और बंद आदि काव्यरूप उल्लेखनीय हैं। उत्तर भारत के कई फारसी कवियों द्वारा वली की आकर्षक और प्रभावपूर्ण शैली का अनुकरण किया गया।

दिल्ली के हातिम, फायज, पकरंग आदि अनेक समकालीन फारसी कवि इनसे प्रभावित हुए और देशीभाषा में कविता करने लगे।[120] डॉ0 रामकुमार गुप्त के अनुसार, ''वली का महत्त्व इसलिए भी है कि उन्होंने दक्खिनी की स्वाभाविक धारा को उर्दू की *सुसंस्कृत जबान में विलीन कर दिया। इन्हीं की ज्योति से उत्तरी भारत में उर्दू के दीप जले और दक्खिनी के अनगिनत कवि पतिंगों की तरह उनकी ज्योति में अपनी सुधबुध खोकर खिंचते से चले गये।''*[121]

वली की समर्थ शैली का उदाहरण देखिए-

''जिसे इश्क का तीर कारी लगे।
उसे जिन्दगी क्यों न भारी लगे।।
न होवे उसे जग में हरगिज करार।
जिसे इश्क की बेकारी लगे।।
वली को कहे तूं अगर एक वचन।
रकीबों के दिल में कटारी लगे।।''[122]

वली के पश्चात् यह धारा उर्दू और हिन्दी में बँट गई। इसके बावजूद हिन्दी काव्य परम्परा का प्रवाह नहीं रुका। गूजरी काव्य का सिलसिला 19वीं सदी के अंत तक चलता रहा। इस परम्परा का निर्वाह करने वाले कवियों में मिस्कीन, अब्दुल्ला वाईज़ और शेख़ रहमतुल्ला विशेष उल्लेखनीय हैं। शेख़ दीन, पीर मशायख़, मंजूर, गुलामी के द्वारा भी इसमें इज़ाफा होता रहा है।

गुजरात में विभिन्न सन्त प्रणालिकाएँ, पंथ एवं सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं। गोरख पंथ (मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा); महात्मा चक्रधर द्वारा प्रवर्तित महानुभाव अथवा अच्युत सम्प्रदाय; कबीर पंथ के प्रचलित पंथों और उपपंथों में संत कबीरिया पंथ, निर्वाण साहब की परम्परा, निरंजन पंथ, टकसारी पंथ, जीवा पंथ, दान कबीरिया, मंगल कबीरिया, हंस कबीरिया, उदासी कबीरिया; संत दादू दयाल द्वारा प्रवर्तित दादू पंथ या पारब्रह्म सम्प्रदाय दादू पंथ के पाँच उप सम्प्रदाय खालसा, विरक्त तपस्वी, खाकी, उत्तराधेव स्थान-चारी और नागा; वल्लभाचार्य का पुष्टि सम्प्रदाय (शुद्धाद्वैती सम्प्रदाय); निम्बार्काचार्य का निम्बार्क सम्प्रदाय; स्वामीरामदास द्वारा स्थापित रामसनेही सम्प्रदाय; अखा के शिष्यों द्वारा विकसित अखा-प्रणालिका;

निरान्त-सम्प्रदाय; कुबेरपंथ आदि विभिन्न सम्प्रदाय, पंथ तथा उनके उप सम्प्रदाय तथा उपपंथ मिलते हैं।

मध्यकालीन साहित्य को धर्म और संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे तो मध्यकाल समग्रत: इसी धर्म और संस्कृति का व्याख्याता रहा है किंतु कहीं-कहीं कवि दरबारी मनस्थिति के अनुरूप या आश्रयदाता की मनोवृत्ति के अनुरूप भी कविताएँ प्रायोजित करता था, समस्यापूर्ति जैसी कविताएँ इसी वृत्ति को दर्शाती हैं।

अत: कहा जा सकता है गुजरात का मध्यकालीन साहित्य अधिकांशत धर्म सम्प्रदायों का मुखापेक्षी रहा है। अनेकानेक संत-महात्माओं तथा गुरु एवं आचार्यों ने गुजरात के हिन्दी साहित्य-सृजन को समृद्ध किया है। आज भी गुजरात में हिन्दी के प्रति यह उदारवादी चेतना वर्तमान है।

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची

1. 'गुजराती साहित्य का इतिहास' - श्री जयन्त कृष्ण हरिकृष्ण दबे, पृ0 23 ।
2. देखिए - 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण', पृ0 109 ।
3. 'हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्त कवियों की देन', पृ0 47 ।
   डॉ0 रामकुमार गुप्त के इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि स्वामी नारायण सम्प्रदाय व पूर्ववर्ती सम्प्रदाय साहित्य और चिंतन की दृष्टि से इतने समर्थ थे कि उनमें परिष्करण की आवश्यकता ही नहीं थी। स्वामी नारायण सम्प्रदाय अपने पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का मुखापेशी रहा है। इस सम्प्रदाय की मुख्य सिद्धान्त पुस्तक 'शिक्षापत्री' पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों की अनुकृति मात्र है।
4. 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ' में डॉ0 नटवर लाल अ0 व्यास ने इनका नाम 'घनश्याम' तथा जयन्त कृष्ण दबे ने 'गु0 सा0 का इति0' में इनका नाम 'हरि कृष्ण' बताया है।
5. 'गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)' - अनन्तराव रावल, पृ0 204 ।
6. सारंगपुर का वचनामृत -18, 'वचनामृतम', पृ0 191 ।
7. 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ', पृ0 209 ।
8. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण', पृ0 110 ।
9. 'मुक्तानन्द काव्यम्' (संशोधित) - हरिजीवन दास शास्त्री, पृ0 471 ।
10. 'कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला एवं उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्त्व' - डॉ0 निर्मला आसनानी, पृ0 208 ।
11. 'रंग भर सुन्दर श्याम रमे' -डॉ0 रघुवीर चौधरी, पृ0 36 ।
12. 'ब्रह्मानन्द काव्य' - संपा0 मोतीलाल त्रिभोवनदास फौजदार, पद 936 ।
13. 'रंग भर सुन्दर श्याम रमे', पृ0 60 ।
14. 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ', पृ0 209 ।
15. 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' - डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ0 134 ।
16. 'भारतनो धार्मिक इतिहास' -शाह देवजी लल्लुभाई, पृ0 137 ।
17. वही
18. 'उत्तर भारत की संत परम्परा', पृ0 604 ।
19. 'अ' वही, पृ0 593 ।
    'ब' 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया', वा0 4, पृ0 221

20. 'कीर्तन की वाणी' - राजबख्श, पृ0 1 ।
21. 'हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि', पृ0 204 ।
22. 'प्राणनाथः सम्प्रदाय एवं साहित्य', पृ0 94 ।
23. वही, पृ0 96 ।
24. 'India since 1526' - V.D. Mahajan, pp 240-41
25. 'कुलजमस्वरूप, प्रकाश' - प्राणनाथ, प्र0 37, चौ0 62 ।
26. 'हिन्दी साहित्य को गुजरात के संत कवियों की देन' में डॉ0 रामकुमार गुप्त द्वारा 'सुन्दर सागर' - भूमिका से उद्धृत, पृ0 68 ।
27. 'कुलजमस्वरूप, प्रकाश' - प्राणनाथ, प्र0 37, चौ0 61 ।
28. 'प्राणनाथः सम्प्रदाय एवं साहित्य', पृ0 149 ।
29. 'उत्तर भारत की संत परम्परा', पृ0 594 ।
30. 'गुजरात की हिन्दी सेवा' (शोध निबन्ध), पृ0 216 ।
31. स्वामी लालदास की बीतक, प्र0 7, चौ0 18 ।
32. 'कुलजमस्वरूप, सनंध' - प्राणनाथ, प्र0 1, चौ0 13-15 ।
33. 'कुलजमस्वरूप, खुलासा' - प्राणनाथ, प्र0 12, चौ0 42 ।
34. 'उत्तर भारत की संत परम्परा', पृ0 597 ।
35. 'गुजरात के संतों की हिन्दी वाणी', पृ0 115 ।
36. 'The Devine Message of Lord Prannath' - P. Krishnamurty Iyer, p-20
37. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ0 278 ।
38. 'श्री छोटी वृत' - संपा0 ब्रह्मचारी मंगलदास शर्मा, पृ0 122 ।
39. 'प्राणनाथः सम्प्रदाय एवं साहित्य', पृ0 159 ।
40. 'श्री प्राणनाथसन्देश' (पत्रिका), प्रणामी साहित्य अंक, पृ0 51 ।
41. 'वृत्तान्तमुक्तावली' (भूमिका) - ब्रजभूषण, पृ0 12
42. 'श्री सर्वेश्वर', वृन्दावन अंक, पृ0 100
43. 'बख्शी हंसराज कृत श्री मिहराज चरित्र', भूमिका - संपा शास्त्री देवकृष्ण शर्मा, पृ0 4 ।
44. 'छत्रसाल ग्रंथावली' (भूमिका) - सं0 श्री वियोगी हरि, पृ0 15 ।
45. 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास', पृ0 228 ।
46. प्रणामी धर्म पत्रिका 'मुकुन्द वाणी', अंक जुलाई 1958, पृ0 4 ।

47. 'प्राणनाथः सम्प्रदाय एवं साहित्य', पृ0 176 ।
48. 'श्री निजानन्द भजन सागर', पृ0 30 ।
49. 'मिश्रबन्धु विनोद' (द्वितीय भाग) - मिश्रबन्धु, पृ0 565 ।
50. प्रणामी धर्म पत्रिका 'उपदेशांक', सं0 1999(अश्विन), पृ0 83 ।
51. 'दूसरा प्रणाम' - प्रो0 माताबदल जायसवाल, पृ0 17 ।
52. 'महाराज छत्रसाल बुन्देला' - डॉ0 भगवान दास गुप्त, पृ0 111 ।
53. Panna Gazetteer, pp. 37-38
54. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण,' पृ0 118 ।
55. 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', पृ0 142 ।
56. 'विश्वधर्म दर्शन' (1953), पृ0 124 ।
57. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 54 ।
58. 'आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ' (प्रथम संस्करण), पृ0 256 ।
59. 'राजस्थान के जैन संत', प्रस्तावना, पृ0 1 ।
60. वही, पृ0 23 ।
61. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 57 ।
62. 'A History of Gujarat', Vol-I, Page-527
63. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 54 ।
64. 'रूपचन्द कुंवर रास', पृ0 157 ।
65. 'राजस्थान के जैन संत', पृ0 50 ।
66. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 58 ।
67. 'जैन साहित्य और इतिहास', पृ0 393 ।
68. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 79 ।
69. 'हिन्दी पद संग्रह', पृ0 298-300 ।
70. 'राजस्थान के जैन संत', पृ0 160 ।
71. वही, पृ0 192 ।
72. 'जैन गूर्जर कविओ' भाग-1, पृ0 211-216 में इन्हें गुजरात का कवि माना है।
73. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 107 ।
74. वही, पृ0 112 ।
75. 'जिनराज-कीर्ति-कुसुमांजलि', पृ0 112

76. 'आनन्दघन पद संग्रह', पद 20, पृ0 52 ।
77. 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ' के पृ0 99 से उद्धृत ।
78. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 139 ।
79. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 139 ।
80. 'जैन गूर्जर कविओ' भाग-3, खण्ड-2, पृ0 1253 ।
81. 'जिनहर्ष ग्रंथावली', पृ0 413 ।
82. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 73 ।
83. 'भुज (कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला' - कुअंर चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ0 31 ।
84. 'गूर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 174 ।
85. 'गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 56 ।
86. 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', पृ0 734 ।
87. वही, पृ0 734 ।
88. 'भजनसागर' भाग 1-2 और 'अध्यात्म भजनमाला' भाग-2, सं0 1959 ।
89. 'कच्छी सन्तों की हिन्दी वाणी', पृ0 26 ।
90. 'रविसाहेबनी वाणी', पृ0 23 ।
91. 'गुजरात में कबीर परम्परा', पृ0 131 ।
92. डॉ0 रामकुमार गुप्त डाह्याभाई पुस्तकालय नडियाद में सुरक्षित हस्तप्रति से उद्धृत - 'गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 154 ।
93. वही, पृ0 156 ।
94. 'कच्छना संतों अने कविओ', पृ0 171
95. 'रवि-भाण अने मोरारनी वाणी', पद 25, पृ0 72 ।
96. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : पुनरीक्षण', प्रथम संस्करण, 1998 में प्रो0 अल्लाबख़्श शेख़ का लेख, पृ0 89-90 ।
97. 'गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा'- डॉ0 नागर और प्रो0 अल्लाबख्श शेख, पृ0 21 ।
98. वही, पृ0 92 ।
99. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : पुनरीक्षण', 1998, पृ0 94 ।
100. 'गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा', पृ0 12 ।
101. 'उर्दू की इब्तेदाई नकवोनुमा में सूफियाये किराम का काम' - डॉ0 अब्दुल हक़,

पृ0 54 ।

102. 'गुजरात की हिन्दी सेवा' (शोध प्रबन्ध)- डॉ0 अम्बाशंकर नागर

103. देखिए -'उर्दू की इब्तेदाई नकवोनुमा में सूफियाये किराम का काम' - डॉ0 अब्दुल हक़, पृ0 54 और 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ' में पृ0 100 ।

104. 'गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा', पृ0 4 ।

105. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : पुनरीक्षण', पृ0 93 ।

106. 'गुजरात की हिन्दी सेवा' से उद्धृत

107. 'गुजरात की हिन्दुस्तानी काव्यधारा', पृ0 20 ।

108. 'मध्य युगीन सूफी और संत साहित्य' में 'जवाहर-उल-इसरारे-अल्ला' (भगवत रहस्य सार) नाम मिलता है।

109. 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा', पृ0 12 ।

110. वही, पृ0 13 ।

111. 'उर्दू की इब्तेदाई नकवोनुमा में सूफियाये किराम का काम' - डॉ0 अब्दुल हक, पृ0 58 ।

112. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण', पृ0 99 ।

113. 'डॉ0 अम्बाशंकर नागर अभिनन्दन ग्रंथ', पृ0 102 ।

114. 'मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य', पृ0 92 ।

115. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं अन्वेषण', पृ0 100 ।

116. वही, पृ0 102 ।

117. देखिए- 'यूसुफ जुलेखा' की भूमिका - डॉ0 सैयदा जाफ़र ।

118. 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य : अध्ययन एवं पुनरीक्षण', पृ0 98 ।

119. देखिए- 'गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 139 ।

120. 'हिन्दी साहित्य' (द्वितीय खण्ड) - संपा0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा

121. 'गुजरात के संतों की हिन्दी साहित्य को देन', पृ0 138 ।

122. वही, पृ0 139 ।